: 302, 'Krishna-Kunj', Plot No.30, Navyug CHS Ltd., V. L Mehta Marg, Vile Parle (w), Mumbai–400056
Phone No. : (022) 2613 0820. **Website**: www.vitragvani.com **Email**: vitragva@vsnl.com

"Vairagya Varsha" has been published by us & the PDF version of the same has been put on our website www.vitragvani.com

We have taken due care, while preparing the same. However, if you find any typographical error, you may kindly inform us on info@Vitragvani.com

By "Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust"
(Shri Shantilal Ratilal Shah-Parivar, Mumbai)

www.vitragvani.com

श्री सीमंधर-कुंदकुंद-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं. ७

ॐ

परमात्मने नमः ।

वैराग्य-वर्षा

✻

: संकलनकार :

जितेन्द्र नागरदास मोदी

C/o केसेट विभाग,

श्री दि. जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़–३६४ २५०

✻

: अनुवादक :

मगनलाल जैन

✻

: प्रकाशक :

सूरजबेन अमुलखभाई शेठ स्मृति ट्रस्ट

२१८, वीणा विहार,

सायन (इस्ट), मुंबई-४०० ०२२

गुजराती दो आवृत्तियाँ : प्रत ९,०००

हिन्दी प्रथमावृत्ति : प्रत ३,१००

हिन्दी द्वितीयावृत्ति : प्रत २,१००

हिन्दी तृतीयावृत्ति : प्रत २,०००

कहान सं. २२ वीर सं. २५२९ विक्रम सं. २०५९ इ. स. २००२

प्राप्तिस्थान :

सूरजबेन अमुलखभाई शेठ स्मृति ट्रस्ट

२१८, वीणा विहार,

सायन (इस्ट), मुंबई}४०० ०२२

मूल्य : रू. ५=००

❀

: मुद्रक :

स्मृति ऑफसेट

सोनगढ़-३६४२५० (सौराष्ट्र)

PH : (02846) 244081

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दो शब्द

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने महाविदेहक्षेत्रसे आकर यहाँ भरतक्षेत्रमें जन्म लिया। उनके पधारनेसे मुमुक्षु समाजके लिये तो यह विषम पंचमकाल भी चतुर्थकाल जैसा हो गया है। पूज्य गुरुदेवने अपने जीवन-कालमें स्वानुभव समृद्ध अपने पवित्र जीवनसे तथा भवनाशक अध्यात्म-अमृतवाणीसे हम सब पर अनुपम उपकारकी वर्षा की है। पैंतालीस वर्ष तक उनकी लगातार अध्यात्मवर्षासे धर्मका सुकाल वर्त रहा है। वर्तमानमें उनकी उपस्थिति नहीं है, परन्तु जैसे दोपहरमें तपते हुए सूर्यके प्रखर तापसे तप्त पाषाण-शिला सूर्यास्तके पश्चात् भी बहुत समय तक तपती रहती है, वैसे ही उपकारमूर्ति पूज्य गुरुदेवने लगातर पैंतालीस वर्ष तक जो अध्यात्म-अमृतकी वर्षा की है उसके प्रभावसे पंचमकालके अन्त तक यह भरतक्षेत्र अध्यात्मकी हरियालीसे आत्मार्थियोंके लिये हराभरा रहेगा।

करुणासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्रीने पैंतालीस वर्ष तक जो अध्यात्म-अमृतकी वर्षा की उसमें मुख्यरूपसे तो उस द्रव्य दृष्टिकी ही प्रधानता है कि जिसके अभावमें यह जीव अबतक संसारमें भटक रहा है। 'द्रव्यदृष्टिसे वर्तमानमें ही मैं तो परिपूर्ण भगवान स्वरूप हूँ,' 'मैं तो एक ज्ञायक हूँ'–इस मुख्य विषयको ही जीवनभर घुँटाते रहे और साथ ही साथ इस मनुष्यभवकी दुर्लभताका पाठ भी पढ़ाते रहे हैं। सुमेरु जितने पुण्यके योगसे प्राप्त यह सच्चे देव–गुरुका दुर्लभ उत्कृष्ट योग प्राप्त करके मुमुक्षुजन संसार, शरीर एवं भोगोंसे भयभीत होकर आत्महितमें विशेष सावधान रहें इस हेतु वे अध्यात्मकी गूढ़ मूलभूत बातोंके साथ–साथ क्षण भंगुर आयुकी सैकड़ों घटनाओंका भी वैराग्यभावसे वर्णन करते थे। उनकी अध्यात्म-देशना तो अभूतपूर्व थी ही, परन्तु उनकी वैराग्यवाणीका श्रवण करनेवालोंका सांसारिक रस भी नीरस हो जाता था। संसारसे विरक्तचित्त उनकी वाणीमें मानों करुणा प्रवाहित होती थी और वे बारबार कहते थे कि—अरे! सिर पर मौत मँडरा रही है तब इसे हँसी क्यों आ रही है? इसलिये जब भी कोई सांसारिक वैराग्यकी घटना उनके सुननेमें आती तब वे अति वैराग्यभावसे उसका वर्णन करके संसारसे विरक्त होनेकी भावना घुँटाते थे।

उनका कहना था कि–द्रव्य दृष्टिकी उत्कृष्ट देशना अंतरमें उतारनेके लिये सर्व प्रकारके सांसारिक कार्योंका रस उड़ जाना चाहिये, अंतरमें संसार-शरीर-भोगसे उदासीनता होना चाहिये, बाह्य प्रसंगोंसे विरक्तचित्त हो जाना चाहिये, कहीं रुचे नहीं ऐसी अंतरंग दशा होना चाहिये....दूसरोंके मरण-प्रसंग देखकर आयुकी क्षणभंगुरताके विचारसे उसके हृदय पर चोट लगना चाहिये कि–अरे! आयुकी ऐसी अनिश्चितता! और मैं प्रमादी होकर यह क्या कर रहा हूँ? वादिराज मुनि तो कहते हैं कि—भूतकालके दुःखोंका स्मरण करने पर मेरे हृदयमें मानों शस्त्राघात होता है.....तो अनन्तकालमें भोगे हुए ऐसे दुःखोंसे मैं कब छूटूँगा? कैसे छूटूँगा? ऐसी वेदना उसे अंतरसे होना चाहिये...तब यह कच्चे पारे जैसी, सिंहनीके दूध समान द्रव्यदृष्टिकी देशना अंतरमें परिणमित होगी।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि–मुमुक्षुका हृदय आर्द्र होना चाहिये। उसके अंतरमें वैराग्य होता है, चारगतियोंके दुःखकी थकान होती है, सत्यका कथन करनेवाले देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिसे उसका हृदय रँगा होता है, उसके कषायोंकी मर्यादा होती है, उसे एक आत्माकी ही लगन लगी रहती है–ऐसे अनेक प्रकारसे मुमुक्षुता सम्बन्धी कथन करती थीं। पूज्य गुरुदेवश्री भी पूज्य बहिनश्रीके लिये 'जीवित भी मृतक समान हैं'–कह कर ऐसी प्रेरणा देते थे कि भाई! जिसे इस भवमें ही आत्महित साध लेना हो उसका जीवन ऐसा–संसारसे विरक्तचित्त, वैराग्यमय होना चाहिये।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

द्रव्यदृष्टिका परिणमन हो, वैराग्यभावनामें वृद्धि होती रहे तथा आप्तजनोंके वियोगका प्रसंग आने पर अथवा रोगकी असह्य वेदना आदि प्रतिकूल परिस्थितिमें भी आर्तध्यान न हो और आत्मजागृति रहे इस हेतु अनेक मुनि-भगवन्तोंके अमृत-वचनोंसे वैराग्यकी प्रेरणा प्राप्त होती रहे यह इस ''वैराग्यवर्षा'' का उद्देश्य है।

असाध्य रोगोंके समय आत्मजागृति हेतु परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्रीका सम्बोधन जो कि ''वैराग्यवाणी'' नामसे गुजरातीमें प्रकाशित हुआ था वह अप्राप्य होनेसे उसे इस पुस्तकके अन्तमें दे दिया है।

मेरे पूज्य पिताश्री नागरदास बी. मोदी तथा काकाश्री उमेदराय बी. मोदीके सम्पूर्ण मार्गदर्शनमें तैयार हुआ इस 'वैराग्य-वर्षा'का यह संकलन आत्मार्थियोंको आत्मसाधनामें वैराग्य-प्रेरक शक्ति बने तथा अत्यन्त दुर्लभ ऐसे इस मनुष्य भवको सार्थक करे–ऐसी हार्दिक भावनाके साथ......

–संकलनकार

❀

❀ आत्मशान्तिका उपाय ❀

आत्मा चाहे जैसे संयोगमें भी अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। अपनी शान्तिको प्रगट करनेमें जगतका कोई बाह्य पदार्थ विघ्न डालनेमें समर्थ नहीं है। कोई भी प्रतिकूल प्रसंग आ जाय–पुत्रकी मृत्यु हो गई हो या पुत्री विधवा हो जाय, जंगलमें अकेला भटक गया हो अथवा हैजा आदि असाध्य रोगसे ग्रसित हो, भूख-प्यासकी तीव्र वेदना हो या सिंह-वाघ फाड़ खानेके लिये सामने खड़ा हो अथवा अन्य कोई भी विषम परिस्थिति उत्पन्न हुई हो, तथापि उस संयोगका लक्ष छोड़कर आत्मा अंतरमें अपनी शान्ति प्रगट करनेमें समर्थ है। बाह्यमें आयी हुई प्रतिकूलता आंतरिक आत्म-शान्तिको नहीं रोक सकती। शास्त्रमें तो कहते हैं कि नरकोंमें एक क्षणकी इतनी महान पीड़ा है कि करोड़ों जिह्वाओंसे करोड़ों वर्षतक उसका वर्णन किया जाय तब भी हो नहीं सकता। तथापि वहाँ भी यदि उन संयोगोंका तथा उस पीड़ाका लक्ष छोड़ दे तो आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। भाई! तेरा विद्यमान तत्त्व तुरन्त फल देनेवाला है। उसका लक्ष करके अपनी शान्ति स्वयं प्रगट कर सकता है।

–उपकारमूर्ति पूज्य गुरुदेव

❀

❀ आत्महितकी प्रेरणा ❀

❀ आजकल तो बसों, रेलगाड़ियों, हवाई जहाजों आदिकी दुर्घटनाओंमें अनेक लोगोंके मरनेकी खबरें आती रहती हैं। आँख खुले और स्वप्न समा जाय, वैसे ही शरीर और भव क्षणभरमें समाप्त हो जाता है। हृदयाघात होने पर क्षणमें छोटी-छोटी उम्रमें चले जाते हैं। अरे! ऐसा है यह सं...सार! नरकमें अन्नका एक दाना भी नहीं मिलता, पानीकी बूँद भी नहीं मिलती और प्रतिकूलताका कोई पार नहीं है.....ऐसी स्थितिमें अनंतबार वहाँ जाकर निकल आया है, परन्तु सब भूल गया है। उस सबका विचार करे तो उन दुःखोंसे छूटनेका मार्ग ढूँढ़े। अहा! ऐसी मनुष्य पर्याय और सत्यको समझनेका योग प्राप्त हुआ है उसमें अपने आत्माका हित कर लेने जैसा है।

❀ कोई विकराल सिंह झपट्टा मारता हुआ अपने पीछे आ रहा हो तो स्वयं कैसी दौड़ लगायेगा? क्या वहाँ श्वास लेनेके लिये भी खड़ा रहेगा? उसी प्रकार यह कालरूपी सिंह झपट्टा मारता हुआ पीछे दौड़ता आ रहा है और आत्महितके अनेक कार्य करना हैं–ऐसा उसे निरन्तर लगना चाहिये।

❀ किसी आदमीको फाँसीकी सजा हुई हो, और जब उसे फाँसीके तख्ते पर ले जाते हैं तब वह भयभीत होकर कैसा काँपने लगता है! उसी प्रकार जो संसारके दुःखोंसे भयभीत हुए हों उन्हें आत्महित कर लेनेकी यह बात है।

–करुणासागर पूज्य गुरुदेव

मौत सिर पर मँडरा रही है....

मृत्यु तो अवश्यंभावी है; उस समय सब छूट जायगा। बाह्यमें एक वस्तु छोड़ने पर तुझे दुःख होता है, तब बाह्यमें समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा? मरणकी वेदना भी कितनी होगी? 'कोई मुझे बचा लो!'–ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा; परन्तु क्या तुझे कोई बचा सकेगा? भले ही तू धनका ढेर लगा दे, वैद्य और डॉक्टर सब प्रयत्न करके देख लें, आसपास खड़े हुए सगे-सम्बन्धियोंकी ओर तू दयनीय भावसे टुकुर-टुकुर देखता रह, तथापि कोई तुझे शरणभूत हो सके ऐसा है? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी प्रतीति-अनुभूति करके आत्माराधना की होगी, आत्मामेंसे शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी; इसलिये अभीसे वह प्रयत्न कर। भवभ्रमण कितने दुःखोंसे भरा है उसका गंभीरता पूर्वक विचार तो कर! नरकके दुःखोंमें एक क्षण बिताना भी असह्य लगता है, तब सागरोपम कालकी आयु कैसे पूर्ण हुई होगी? नरकके दुःख सुने जाये ऐसे नहीं हैं। पाँवमें काँटा लग जाने जितना दुःख भी तू सहन नहीं कर सकता, तो फिर जिसके गर्भमें उससे अनन्तानन्तगुने दुःख भरे पड़े हैं ऐसे मिथ्यात्वको छोड़नेका उद्यम क्यों नहीं करता? 'मौत सिर पर मँडरा रही है' ऐसा बारम्बार स्मरण करके तू पुरुषार्थको बढ़ा ताकि 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' –ऐसे भावमें समाधिपूर्वक शरीरका त्याग कर सके। जीवनमें एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।

–पूज्य बहिनश्री

ॐ

परमात्मने नमः ।

❀ वैराग्य-वर्षा ❀

भगवान तीर्थंकरदेव द्वारा जिनका चिंतवन किया गया ऐसी अध्रुव आदि बारह भावनाएँ वैराग्यकी जननी हैं, समस्त जीवोंका हित करनेवाली हैं, परमार्थमार्गको बतलानेवाली हैं, तत्त्वका निर्णय करानेवाली हैं, सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाली हैं, अशुभ ध्यानका नाश करनेवाली तथा आत्मकल्याणके अर्थी जीवको सदैव चिंतवन करनेयोग्य हैं । *(—श्री भगवती आराधना)*

❀ नवनिधि चौदहरत्न, घोड़े, मत्त उन्मत्त हाथी, चतुरंगिणी सेना आदि सामग्रियाँ भी चक्रवर्तीको शरणरूप नहीं हैं । उसका अपार वैभव उसे मृत्युसे नहीं बचा सकता ।

जन्म, जरा, मरण, रोग और भयसे अपना आत्मा ही अपनी रक्षा करता है । कर्मका बंध, उदय और सत्तासे भिन्न अपना आत्मा ही इस संसारमें शरणरूप है । कर्मोंका क्षय करके जन्म–जरा–मरणादिके दुःखोंसे अपना आत्मा ही अपनेको बचाता है । १.

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, बारह भावना)

❀ एक जीव दूसरे किसी जीवके विषयमें शोक करता हुआ कहता है कि अरेरे! मेरे नाथका मरण हुआ । परन्तु वह अपने लिये शोक

www.vitragvani.com

नहीं करता कि मैं स्वयं संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। संसारमें जीव जिसप्रकार दूसरोंके विषयमें विचार करता है उसीप्रकार यदि अपने लिये भी करे तो शीघ्र अपना हित हो जाय। परन्तु जीव अपने विषयमें सम्भवतः विचार नहीं करता। २. *(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, मूलाचार)*

❀ हे जीव! मैं अकिंचन हूँ अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं है ऐसी सम्यक् भावनापूर्वक तू निरन्तर रह क्योंकि इसी भावनाके सतत चिंतवनसे तू त्रैलोक्यका स्वामी होगा। यह बात मात्र योगीश्वर ही जानते हैं। उन योगीश्वरोंको गम्य ऐसे परमात्मतत्त्वका रहस्य मैंने तुझसे संक्षेपमें कहा। ३. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ संसारमें लोग अपने किसी सम्बन्धी मनुष्यकी मृत्यु होनेपर उसे पुकार कर रुदन करते हैं तथा उसका जन्म होनेपर जो हर्ष मनाते हैं उसे उन्नत्त बुद्धिके धारक गणधर आदि पागलपन कहते हैं; क्योंकि अज्ञानवश जो मिथ्या प्रवृत्तियाँ की गई हों उनसे होनेवाले कर्मके प्रकृष्ट बंध और उसके उदयसे सदा यह सारा विश्व मृत्यु और उत्पत्तिकी परम्परा स्वरूप है। ४. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ यह जगत इन्द्रजाल तथा कदली-स्तंभके समान केवल निःसार है, यह क्या तू नहीं जानता? नहीं सुना? अथवा प्रत्यक्ष नहीं दिखता? हे जीव! आप्तजनोंकी मृत्युके पीछे शोक करना वह निर्जन वनमें टेर लगाने समान व्यर्थ है। जो उत्पन्न हुआ है वह मरेगा ही। मृत्युके समय उसे कौन बचा सके ऐसा है? तथापि मूर्ख मनुष्य सम्बन्धीजनोंकी मृत्युके पीछे शोक करते हैं यही अनादिकालीन मोहका पागलपन है। ५.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ यह अज्ञानी प्राणी, अमुक मर गये, अमुक मृत्युके सन्मुख हैं और अमुक निश्चितरूपसे मरेंगे ही—इसप्रकार सदा दूसरोंके विषयमें गिनती करता रहता है; परन्तु शरीर, धन, स्त्री आदि वैभवमें महामोहसे ग्रसित

मूर्ख मनुष्य अपने समीप आयी हुई मृत्युको देखता भी नहीं है। ६.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ दयारहित यमराज जो मरणसे डरता है उसको छोड़ता नहीं है। इसलिये बेमतलब डर न कर। अपना चाहा हुआ सुख कभी नहीं प्राप्त होता है इसलिये तू इस सुखकी इच्छा न कर। जो मर गया-नष्ट हो गया उसका शौच करने पर लौटकर नहीं आता है इसलिये बेमतलब शोक न कर। समझकर काम करनेवाले विद्वान् बेमतलब काम किसलिये करेंगे? ७. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ हे अज्ञानी मनुष्य! यह समस्त जगत इन्द्रजालके समान विनश्वर एवं कदली-स्तंभके समान निःसार है। यह बात क्या तू नहीं जानता? क्या शास्त्रमें नहीं सुना है? क्या प्रत्यक्ष नहीं देखता? अर्थात् तुम इसे अवश्य जानते हो, सुनते हो और प्रत्यक्षरूपसे देखते भी हो, तब फिर भला यहाँ अपने आप्तजनका मरण होनेपर शोक क्यों करते हो? अर्थात् शोक छोड़कर ऐसा कुछ प्रयत्न करो कि जिससे शाश्वत, उत्तम सुखके स्थानभूत मोक्षको प्राप्त कर सको। ८. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ हे भाई! अपनी दृष्टिके सामने तू क्या नहीं देखता कि यह जगत कालरूपी प्रचण्ड पवनसे निर्मूल हो रहा है! भ्रान्तिको छोड़! जगतमें किसीकी नाममात्र भी स्थिरता नहीं है। जिस दिनका मंगलमय प्रभात उगता है, वही दिवस अस्तपनेको प्राप्त होता है। भाई! इस जगतका स्वभाव ही क्षणभंगुर है! पर्वत समान विस्तीर्ण लगनेवाले रूपोंका घड़ीभरमें अवशेष भी दिखायी नहीं देता कौन जाने किस कारणसे तू इस इन्द्रजालवत् जगतके इष्ट पदार्थोंमें आशा बाँधकर भटकता रहता है। ९.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ यह मनुष्य क्या वातका रोगी है? क्या भूत-पिशाच आदिसे ग्रसित है? क्या भ्रान्तिमें पड़ा है? अथवा क्या पागल है? क्योंकि वह

www.vitragvani.com

'जीवन आदि बिजलीके समान चंचल हैं' यह बात जानता है, देखता है और सुनता भी है, तथापि अपना कार्य (आत्महित) नहीं करता। १०. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ जो वीर है उसे भी मरना पड़ता है तथा जो वीर नहीं है वह भी अवश्य मरता है। यदि वीर और कायर दोनों मरते ही हैं तो वीरतासे अर्थात् संक्लेशरहित परिणामोंसे मरना ही श्रेष्ठ है। मैं शांत परिणामी होकर प्राणोंका त्याग करूँगा। ११. *(मूलाचार)*

❀ जिस जीवको जिस कालमें जिस विधानसे जन्म-मरण उपलक्षणसे सुख-दुःख-रोग-दरिद्रादिका होना सर्वज्ञदेवने देखा है वह उसीप्रकार नियमसे होना है और वह जिसप्रकार होने योग्य है उस प्राणीको उसी देशमें उसी विधानसे नियमसे होता है उसे इन्द्र या जिनेन्द्र—तीर्थंकरदेव भी रोक नहीं सकते। १२. *(श्री स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

❀ अपने किसी सम्बन्धी पुरुषकी मृत्यु होनेपर जो अज्ञानवश शोक करता है उसके पास गुणकी गंध भी नहीं है, परन्तु दोष उसके पास बहुत हैं—यह निश्चित है। उस शोकके कारण उसका दुःख अधिक बढ़ता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ नष्ट होते हैं, बुद्धिमें विपरीतता आती है, तथा पाप (अशातावेदनीय) कर्मका बंध भी होता है। रोग उत्पन्न होते हैं और अन्तमें मृत्यु प्राप्त करके वह नरकादि दुर्गति प्राप्त करता है। इसप्रकार उसका संसार-परिभ्रमण बढ़ जाता है। १३. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ हे शिष्य! जो कुछ पदार्थ सूर्यके उदय होनेपर देखे थे वे सूर्यके अस्त होनेके समय नहीं देखे जाते, नष्ट हो जाते हैं। इस कारण तू धर्मका पालन कर, धन और यौवन अवस्थामें क्या तृष्णा कर रहा है! १४. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ जिनकी भौहके कटाक्षोंके प्रारंभमात्रसे ब्रह्मलोक पर्यंतका यह

जगत भयभीत हो जाता है, तथा जिनके चरणोंके गुरुभारके कारण पृथ्वीके दबनेमात्रसे पर्वत तत्काल खंड खंड हो जाते हैं, ऐसे ऐसे सुभटोंको भी, जिनकी कि अब कहानीमात्र ही सुननेमें आती हैं, इस कालने खा लिया है। फिर यह हीनबुद्धि जीव अपने जीनेकी बड़ी भारी आशा रखता है, यह कैसी बड़ी भूल है! १५. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ मनुष्य समुद्र, पर्वत, देश और नदियोंको लाँघ सकता है, परन्तु मृत्युके निश्चित समयको देव भी निमिषमात्र (आँखकी पलक जितना) किंचित् भी लाँघ नहीं सकता। इस कारण किसी इष्टजनकी मृत्यु होनेपर कौन बुद्धिमान मनुष्य सुखदायक कल्याणमार्ग छोड़कर सर्वत्र अपार दुःख उत्पन्न करनेवाला शोक करेगा? अर्थात् कोई भी बुद्धिमान मनुष्य शोक नहीं करता। १६. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ सर्व क्षेत्र या सर्व कालमें किसी भी प्रकारसे जीव कालसे बचता नहीं है या बचेगा नहीं। सर्व शरीरधारी प्राणी इस प्रचण्ड कालके वश वर्त रहे हैं। ऐसा प्रत्यक्ष देखकर हे जीव! प्रतिक्षण विनाश सन्मुख जाते हुए शरीरको रखनेकी चिन्ता छोड़कर एक निज आत्माको ही राग-द्वेषादि दुष्परिणामोंसे नष्ट होते हुए बचा, बचा! विनाशी पदार्थको रखनेकी माथापच्ची छोड़कर उस अविनाशी निज आत्मपदकी रक्षा कर, रक्षा कर! और देहनाशकी चिन्तासे निश्चिंत हो, क्योंकि वह निजपद नहीं परन्तु परपद है। १७. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जिन तीर्थंकरोंके चरणोंको इन्द्र चक्रवर्ती आदि लोक-शिरोमणि पुरुष अपनी कांतिरूपी जलसे धोते हैं, जो लोक-अलोकको देखनेवाले केवलज्ञानरूपी राज्यलक्ष्मीके धारी हैं ऐसे तीर्थंकर भी आयुकर्मके समाप्त होने पर इस शरीरको छोड़कर मोक्षको चले जाते हैं, तो फिर अन्य अल्पायुधारी मानवोंके जीवनका क्या भरोसा? १८. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ मनुष्य प्राणीकी दुर्लभता एवं श्रेष्ठताके कारण विधिरूप मंत्रीने

www.vitragvani.com

उसकी अनेक प्रकारसे रक्षा की। दुष्ट परिणामी नरकके जीवोंको अधोभागमें रखा, लोकके चारों ओर अलंघ्य समुद्र तथा उनके चारों ओर घनोदधि, घन और तनु नामके तीन वातवलय (वायुसे घेरे हुए विस्तीर्ण कोट) बनाकर बीचमें यत्नपूर्वक मनुष्य-प्राणीको रखा। विधिकी इतनी-इतनी सुरक्षा होने पर भी मनुष्य-प्राणी मृत्युसे नहीं बच सके। अहो! यमराज अति अलंघ्य है। १९. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जब इन्द्र, चंद्र आदि भी मरणके द्वारा निश्चयसे नाश किये जाते हैं तब उनके मुकाबलेमें कीटके समान अल्पायुवाले अन्य जनकी तो बात ही क्या है? इसलिये अपने किसी प्रियके मरण हो जाने पर वृथा मोह नहीं करना चाहिये। इस जगतमें तू ऐसा कोई उपाय शीघ्र ढूंढ़ जिससे काल अपना दाव न कर सके। २०. *(श्री पद्मनंदि पंचविंशति)*

❀ देव और मृत्यु दोनोंका ही निराकरण नहीं हो सकता तब रक्षण या शरणके लिये किसीका भी अनुसरण करना या किसीके सामने दीनता प्रकाशित करना व्यर्थ ही है। क्योंकि न तो कोई मेरे भाग्यमें परिवर्तन कर सकता है और न मेरी मृत्युको ही रोक सकता है। ये दोनों कार्य अवश्यम्भावी हैं अत-एव इनके लिये धैर्यका अवलंबन लेना ही सत्पुरुषोंको उचित है। २१. *(श्री अनगार-धर्मामृत)*

❀ इस संसारमें ये जो प्रख्यात पुण्यशाली चंद्र, सूर्य, देवेन्द्र, नरेन्द्र, नारायण, बलभद्र आदि कीर्ति, कांति, द्युति, बुद्धि, धन और बलके धारी हैं, वे भी यमराजकी दाढ़में जाकर, अपने-अपने समय पर मृत्युको प्राप्त होते हैं, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है? अतः बुद्धिमानोंको धर्ममें मन लगाना चाहिये। २२. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ जिस संसारमें पृथ्वीको उलटानेमें, आकाशमार्गसे चंद्र-सूर्यको उतार फेकनेमें, वायुको अचल करनेमें, समुद्रके जलको पी डालनेमें तथा पर्वतको चूर्ण करनेमें समर्थ पुरुष मृत्युके मुखमें प्रवेश करते हों, वहां दूसरोंकी क्या स्थिति है? ठीक ही है, जिस बिलमें वनोंके साथ पर्वत समा जाता है उसमें परमाणुका समा जाना कौन बड़ी बात है? २३. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ जीव अकेला मरता है और स्वयं अकेला जन्मता है; अकेलेका मरण होता है और अकेला रागरहित होता हुआ सिद्ध होता है। २४. *(श्री नियमसार)*

❀ यदि जीवने मृत्यु नामक कल्पवृक्षकी प्राप्ति होते हुए भी अपना कल्याण सिद्ध नहीं किया तो जीव संसाररूपी कर्दममें डूबा हुआ फिर क्या करेगा? २५. *(मृत्यु महोत्सव)*

❀ ताड़के वृक्षसे टूटा हुआ फल नीचे पृथ्वी पर गिरते हुए बीचमें कब तक रहेगा? वैसे ही जन्म होनेके पश्चात्‌का जीवन आयु-स्थितिमें कब तक रहेगा? अति अल्पकाल और वह भी अनियत। इसलिये हे भव्य! इन देहादिको क्षणभंगुर जानकर वास्तविक अविनाशी पदका साधन अन्य सर्व कार्योंको छोड़कर भी त्वरासे कर लेना यही सुयोग्य है, क्योंकि जीवन-काल अत्यन्त संकीर्ण है। २६. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ तीव्र रोग और कठोर दुःखरूपी वृक्षोंसे भरे संसाररूपी भयानक वनमें वृद्धावस्थारूपी शिकारीसे डरकर मृत्युरूपी व्याघ्रके भयानक मुखमें चले गये प्राणीको तीनों लोकमें कौन बचा सकता है? उसे यदि बचा सकता है तो जन्म-जरा-मरणका विनाश करनेवाला जिनभगवानके द्वारा उपदिष्ट धर्मामृत ही बचा सकता है। उसे छोड़ अन्य कोई नहीं बचा सकता। २७. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ जिसप्रकार पक्षी रात्रिको किसी एक वृक्ष पर निवास करते हैं और फिर प्रभात होने पर वे सहसा सर्व दिशाओंमें उड़ जाते हैं; खेद है कि उसीप्रकार मनुष्य भी किसी एक कुलमें स्थित रहकर फिर मृत्यु प्राप्त करके अन्य कुलका आश्रय करते हैं। इसलिये विद्वान् मनुष्य उसके लिये किंचित् भी शोक नहीं करते। २८. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

www.vitragvani.com

❀ इस लोकके मनुष्य सम्पूर्ण पापके उदयसे अशातावेदनीय नीच गोत्र और अशुभ नाम, आयु आदि दुष्कर्मोंके वश ऐसे दुःख सहन करते हैं तथापि फिर पाप ही करते हैं, परन्तु पूजा-दान-व्रत-तप तथा ध्यानादि हैं लक्षण जिसका ऐसे पुण्यका उपार्जन नहीं करते यह महान अज्ञान है। २९. *(श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

❀ मेरा मरण नहीं है तो मुझे डर किसका? मुझे व्याधि नहीं है तो मुझे पीड़ा कैसी? मैं बालक नहीं हूँ, युवा नहीं हूँ। यह सर्व अवस्थाएँ पुद्गलकी हैं। ३०. *(श्री इष्टोपदेश)*

❀ यदि यह शरीर बाहिरके चमडेसे ढका हुआ नहि होता तो मक्खी कृमि तथा कौएसे इसकी रक्षा करनेमें कोई समर्थ नहीं होता ऐसे घृणास्पद शरीरको देखकर सत्पुरुष जब दूरहीसे छोड़ देते हैं तब इसकी रक्षा कौन करे? ३१. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ हे जीव! देहके जरा-मरण देखकर तू भय मत कर; अपने आत्माको तू अजर-अमर परम ब्रह्म जान। ३२. *(पाहुड़-दोहा)*

❀ जिस मृत्युसे जीर्ण देहादिक सब छूटकर नवीन हो जाते हैं वह मृत्यु सत्पुरुषोंको साताके उदयकी भाँति हर्षका हेतु नहीं होगी क्या? ज्ञानियोंके तो मृत्यु हर्षका हेतु ही है। ३३. *(मृत्यु महोत्सव)*

❀ श्रुति (आगम), बुद्धि, बल, वीर्य, प्रेम, सुन्दरता, आयु, शरीर, कुटुंबीजन, पुत्र, स्त्री, भाई और पिता आदि सब ही चालनीमें स्थित पानीके समान स्थिर नहीं हैं-देखते देखते ही नष्ट होनेवाले हैं। इस बातको प्राणी देखता है तो भी खेदकी बात है कि वह मोहवश आत्मकल्याणको नहीं करता है। ३४. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

पूर्वोपार्जित दुर्निवार कर्मके उदयवश किसी इष्ट मनुष्यका मरण होनेपर यहाँ जो शोक किया जाता है वह अत्यन्त पागल मनुष्यकी चेष्टा समान है। क्योंकि वह शोक करनेसे कुछ भी सिद्ध नहीं होता परन्तु उससे केवल यह होता है कि उस मूढ़बुद्धि मनुष्यके धर्म, अर्थ और कामरूपी पुरुषार्थ आदि ही नष्ट हो जाते हैं। ३५.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ करना क्या है और करता क्या है? यह बात अपने ध्यानमें नहीं रखता और गांठकी पूंजी खोकर उल्टी मार खाता है अर्थात् मानवदेह व्यर्थमें खो रहा है। ३६. *(श्री बुधजन सतसई)*

इस अल्प आयु और चंचल कायाको इस (मोक्ष) मार्गमें खपा देनेसे यदि परम शुद्ध चैतन्यघन अविनाश निःश्रेयसकी प्राप्ति होती हो तो तुझे फूटी कौड़ीके बदलेमें चिन्तामणि रत्नसे भी अधिकको प्राप्ति हुई है ऐसा समझ। हे जीव! सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप इन चारों आराधनाकी उत्तरोत्तर वृद्धि एवं शुद्धिमें तेरे इस मनुष्य जीवनका जो काल है, उतनी ही तेरी सफल आयु है ऐसा समझ। ३७.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ आत्मा चाहे जैसे संयोगोंमे भी अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। अपनी शान्तिको प्रगट करनेमें जगतका कोई बाह्य पदार्थ विघ्न करनेमें समर्थ नहीं है। चाहे जैसी असह्य घटनाएँ हो जायँ-पुत्र मर जाय, पुत्री विधवा हो जाय, जंगलमें अकेला भटक गया हो और हैजा आदि जैसा असाध्य रोग हो गया हो, क्षुधातृषाकी असह्य वेदना हो या सिंह-वाघ फाड़ खानेको आया हो अथवा चाहे जैसी भयंकर परिस्थिति आ जाय फिर भी उन संयोगोंका लक्ष छोड़कर आत्मा अंतरमें अपनी शान्ति प्रगट कर लेनेमें समर्थ है। बाह्य प्रतिकूलताएँ अंतरंग आत्मशान्तिको रोक नहीं सकतीं। शास्त्रमें तो कहा है कि नरककी एकक्षणकी पीड़ा ऐसी है कि उसे करोड़ों जिह्वाओ द्वारा करोड़ों वर्षतक कहा जाय तब भी उस पीड़ाका वर्णन नहीं हो सकता ऐसी असह्य नरककी पीड़ा है तथापि वहाँ भी उन संयोगोंका और पीड़ाका लक्ष छोड़कर आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर

www.vitragvani.com

सकता है। भाई! तेरा तत्त्व तो हजरा हजूर अर्थात् तुरन्त फल देनेवाला है। उसका लक्ष करके अपनी शान्ति प्रगट की जा सकती है। ३८.

(पू. गुरुदेव–दृष्टिके निधान)

❀ अरिहंतदेवकी प्रतिमाका स्थान जिनालय, श्री जिनेन्द्रदेव (जिन-प्रतिमा), जैनशास्त्र, दीक्षा देनेवाले गुरु, संसारसागरसे तैरनेके कारण परम तपस्वीयोंके स्थान सम्मेदशिखर आदि, द्वादशांगरूप सिद्धांत, गद्य-पद्यरूप रचना इत्यादि जो वस्तु अच्छी या बुरी दिखनेमें आती हैं वे सब कालरूपी अग्निका इंधन हो जावेगी। ३९. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ सम्पत्ति, पुत्र और स्त्री आदि पदार्थ ऊँचे पर्वतके शिखर पर स्थित तथा वायुसे चलायमान दीपकके समान शीघ्र ही नष्ट होनेवाले हैं तथापि जो मनुष्य उनके सम्बन्धमें स्थिरताका अभिमान करते हैं वे मानों मुट्ठीसे आकाशका नाश करते हैं अथवा व्याकुल होकर सूखी नदी तैरते हैं अथवा तृषासे पीड़ित होकर प्रमादयुक्त होते हुए रेतीको पीते हैं। ४०.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ जीवनके क्षणभंगुर होनेसे ही संसारकी सुखदायक वस्तुओंका कोई मूल्य नहीं है। इसीसे इन्हें त्याज्य कहा है। यदि चंचल नेत्रवाली युवतियोंके यौवन न ढलता होता, यदि राजाओंकी विभूति बिजलीके समान चंचल न होती, अथवा यदि यह जीवन वायुसे उत्पन्न हुई लहरोंके समान चंचल न होता तब कौन इस सांसारिक सुखसे विमुख होकर जिनेन्द्रके द्वारा उपदिष्ट तपश्चरण करता! ४१. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ संसारमें जिसका चित्त आसक्त है, अपना रूपकूं जे जानै नहीं तिनके मृत्यु होना भयके अर्थि है। और निजस्वरूपके ज्ञाता हैं अर संसारतैं विरागी हैं तिनके मृत्यु है सो हर्षके अर्थि ही है। ४२.

(मृत्युमहोत्सव)

❀ जो अपनेको सुखी करे वही मित्र है और दुःखी करे वह शत्रु ऐसा आबाल-वृद्ध सभी समझते हैं। मित्र होकर अपनेको दुःखी करनेके लिये (जो) मरे वे तो शत्रुसमान मानें जायँगे उनके मरनेका क्या शौच करना? *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जिस संसारमें देवोंके इन्द्रोंका भी विनाश देखनेमें आता है; जहाँ हरि अर्थात् नारायण, हर अर्थात् रुद्र और विधाता अर्थात् ब्रह्मा तथा आदि शब्दसे बड़े-बड़े पदवी धारक सर्व कालके ग्रास बन गये उस संसारमें क्या शरणरूप है? ४४. *(श्री स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

❀ उस भव्यजीवकी मैं प्रसंशा करता हूँ—उसे धन्य मानता हूँ कि जिसे नरकादि दुःखका स्मरण करते ही हरि-हरादिककी ऋद्धिकी समृद्धिके प्रति भी उदासभाव उत्पन्न होता है। ४५.

(श्री उपदेश-सिद्धान्तरत्नमाला)

❀ पराक्रम ही है अद्वितीय रस जिसके, ऐसा यह मनुष्य तब तक ही उद्धत्त होकर दौड़ता कूदता है जब तक कि कालरूपी सिंहकी गर्जनाका शब्द नहि सुनता। अर्थात् तेरी मौत आ गई ऐसा शब्द सुनते ही सब खेलकूद भूल जाता है। ४६. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ यह जीवन तो बिजलीके चमत्कारके समान क्षणभंगुर है और स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादिका संयोग स्वप्नके समान है, प्राणीयोंके साथ स्नेह संध्याकी लालीके समान हैं, तिनके पर पड़ी हुई ओसकी बिन्दुके समान शरीर पतनशील है। ४७. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ दुनियाके धंधे करता फिरता है, अपना कार्य नहीं करता, अपनी झोंपडी जल रही है उसको बुझाता नहीं, दूसरोंके घरका ईलाज करता फिरता है। ४८. *(श्री बुधजन सतसई)*

❀ दुर्निवार दैवके प्रभावसे किसी प्रिय मनुष्यकी मृत्यु हो जाय तो यहाँ शोक किया जाता है वह अँधेरेमें नृत्य प्रारम्भ करनेके बराबर है।

www.vitragvani.com

संसारमें सर्व वस्तुएँ नाशको प्राप्त होती हैं—ऐसा उत्तम बुद्धि द्वारा जानकर समस्त दुःखोंकी परम्पराको नाश करनेवाले धर्मकी सदा आराधना करो। ४९. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ लोकमें जो दुर्बुद्धि मनुष्य, मरणको प्राप्त हुए मनुष्यके लिये शोक करता है वह अपने परिश्रमका विचार न करके मानों आकाशको मुट्ठियोंसे आहत करता है अथवा (तेलके निमित्त) बालुके समूहको पीलता है। ५०. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ हे आत्माराम! तू देहके बुढ़ापा और मरनेको देखकर डर मत कर। जो अजर अमर परमब्रह्म शुद्ध स्वभाव है, उसको तू आत्मा जान। ५१. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ देवोंके इन्द्र, असुरोंके इन्द्र तथा खगेन्द्र जो-जो हैं उन-उन सबका नाश मृत्यु इस प्रकार करती है जैसे सिंह हिरनको मार डालता है। चिन्तामणि आदि मणिरत्न बड़े-बड़े रक्षामंत्र, तंत्र अनेक होनेपर भी मृत्युसे कोई बचा नहीं सकता। ५२. *(श्री छहढाला)*

❀ दूसरेके दुःख सुनकर कई बार सुननेवालोंके मुँहसे अरेरे! के उद्गार निकल पड़ते हैं, परन्तु वे उद्गार (वैराग्य) सच्चे नहीं है। जीवको दुःख अप्रिय है इसलिये दुःखकी बात सुनने पर उदासीनभाव आ जाता है, परन्तु उससे ऐसा नहीं समझना कि उसे संसारसे सच्ची विरक्ति हुई है। उसे तो चक्रवर्तीकी ऋद्धि सुनकर हर्ष होता है। संसारसे यथार्थ विरक्तिभाववालेको तो चक्रवर्तीकी ऋद्धिका या नारकीके दुःखोंका वर्णन—दोनोंमें एकसमान सांसारिक दुःख लगता है। दोनों ओर एकसमान उदासीनभाव होता है। ५३. *(दृष्टिके निधान)*

❀ हे आत्मन्! इस संसारमें संग कहिये धन-धान्य स्त्री-कुटुंबादिक मिलापरूप जो परिग्रह है वे क्या तुझे विषादरूप नहीं करते हैं? तथा यह शरीर है, वह क्या रोगोंके द्वारा छिन्नरूप वा पीड़ित नहि किया जाता

है? तथा मृत्यु क्या तुझे प्रतिदिन ग्रसनेके लिये मुख नहि फाडती है? और आपदायें क्या तुझसे द्रोह नहि करती है? क्या तुझे नरक भयानक नहि दिखते? और ये भोग हैं सो क्या स्वप्नके समान तुझे ठगनेवाले (धोखा देनेवाले) नहीं हैं? जिससे कि तेरे इन्द्रजालसे रचे हुए किन्नरपुरके समान इस असार संसारमें इच्छा बनी हुई है? ५४. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ हे जीव! जब तक वृद्धावस्था नहीं आती, जब तक रोगरूपी अग्नि शरीररूपी तेरी झोंपड़ीको नहीं जलाती, तब तक इन्द्रियोंकी शक्ति कम नहीं होती तब अपना आत्महित कर ले। ५५. *(भाव पाहुड़)*

❀ जिस शरीरको छोड़कर जाना पड़ेगा वह शरीर अपना कैसे हो सकता है ऐसा विचार कर भेदविज्ञानी पंड़ित शरीरसे भी उस ममत्वभावको छोड़ देते हैं। ५६. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ कोई अति निद्रावश मनुष्यको उसके मर्मस्थान पर मुग्दरकी चोट मारे, अथवा अग्निकी उष्णतासे देहको आँच लगे, अथवा कहीं बाजोंकी ध्वनि सुने तो वह तुरन्त जाग उठता है, परन्तु अविवेकी जीवको पाप कर्मफलके लगातार–एकके बाद एक–उदयरूप मुग्दरोंकी मार मर्मस्थान पर पड़ती रहती है, महादुःखरूप त्रिविध तापसे उसका शरीर निरन्तर जलता रहता है और आज यह मरा, कल वह मरा, अमुक ऐसे मरा, अमुक वैसे मरा, ऐसे यमराजके बाजोंके भयंकर शब्द बारम्बार सुननेमें आते हैं, तथापि वह महा अकल्याणकारी अनादि मोहनिद्राको किंचित् भी हटा नहीं पाता, यह परम आश्चर्य है। ५७. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जिस शरीरकी रचना दुष्ट आचरणसे उपार्जित कर्मरूपी कारीगर द्वारा हुई है, जिसके साँधे और बंधन निंद्य हैं, जिसकी स्थिति विनाशसहित है अर्थात् जो विनश्वर है, जो रोगादि दोष, सप्त धातु एवं मलसे भरपूर है तथा जो नष्ट होनेवाला है, उसके साथ यदि आधि (मानसिक चिन्ता), रोग, वृद्धावस्था एवं मरण आदि रहते हों तो उसमें

www.vitragvani.com

कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु आश्चर्य तो केवल इसमें है कि विद्वान् मनुष्य भी उसी शरीरमें स्थिरता ढूँढ़ते हैं। ५८.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ इस लोकमें राजाओंके यहां जो घडीका घंटा बजता है और शब्द करता है सो सबके क्षणिकपनको प्रगट करता है; अर्थात् जगतको मानो पुकार पुकार कर कहता है कि हे जगतके जीवों! जो कुछ अपना कल्याण करना चाहते हो शीघ्र ही कर लो, नहीं तो पछताओंगे। क्योंकि यह जो घड़ी बीत गई वह किसी प्रकार भी पुनर्बार लौटकर नहीं आयेगी, इसी प्रकार अगली घड़ी भी जो व्यर्थ ही खो दोगे तो वह भी गई हुई नहीं लौटेगी। ५९. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ सिंह चारों ओर घूम रहे हों और जैसे नींद न आये, शस्त्रधारी पुलिस अपनेको मारनेके लिये फिरती हो और जैसे नींद नहीं आये वैसे ही तत्त्वनिर्णय न करे तब तक उसे (आत्मार्थीको) सुखसे नींद नहीं आती। ६०. *(दृष्टिके निधान)*

❀ जैसे कोई पुरुष तप्त लोहेके गोले द्वारा परको घायल करनेकी इच्छा करता हुआ प्रथम तो स्वयं अपनेको घायल करता है (–स्वयं अपने ही हाथको जलाता है), फिर दूसरेको चोट पहुँचे या न पहुँचे–कोई नियम नहीं है। वैसे ही जीव तप्त लोहेके गोले समान मोहादि परिणामरूप परिणमता हुआ प्रथम तो निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानस्वरूप निज शुद्ध भावप्राणको ही घायल करता है, फिर परके द्रव्य प्राणोंको चोट पहुँचे या न पहुँचे—नियम नहीं है। ६१. *(श्री प्रवचनसार-टीका)*

❀ संसारकी समस्त वस्तुयें देख ली। उनमें प्रेम करने या आसक्ति करने योग्य कोई भी वस्तु नहीं है। सूर्यका उदय होना और अस्त होना जैसा प्रगट दिखाई देता है वैसे ही समस्त वस्तुयें अपने ढंगसे आती–जाती रहती हैं। ६२. *(श्री बुधजन-सत्सई)*

❀ तिर्यंचगतिमें छेदन-भेदनके द्वारा जो दुःख उठाये हैं उनको कोई मनुष्य करोडों जिह्वाओंके द्वारा भी कहनेको समर्थ नहीं हैं। ६३.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ हे जीव! जिस पापका उदय जीवोंको दुःख देकर शीघ्र मोक्ष जाने योग्य उपायोंमें बुद्धि कराता है तो वह पापका उदय भी अच्छा है ऐसा ज्ञानी कहते हैं। ६४. (श्री परमात्मप्रकाश)

❀ यदि सर्वप्रथम ही संसारके भयसे मोक्षसुखमें दृढ़ रुचि उत्पन्न होती है तो वह (मोक्षसुखकी) प्राप्तिका सरल उपाय है। ६५.

(तत्त्वज्ञान-तरंगिणी)

❀ मनुष्य मृत्युको प्राप्त हुए जीवोंके विषयमें सुनता है तथा वर्तमानमें वह मृत्युको प्राप्त होनेवाले अनेक जीवोंको स्वयं देखता भी है; तथापि वह मात्र मोहके कारण अपनेको अत्यन्त स्थिर मानता है; इसलिये वृद्धत्वको प्राप्त होनेपर भी वह संभवतः धर्मकी अभिलाषा नहीं करता और इसी कारण अपनेको निरन्तर पुत्रादिरूप बंधनोंसे अत्यन्तरूपसे बाँधता है। ६६. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ ''मनुष्यपना, आप्त उपदेशित श्रुतधर्मका श्रवण, उसके प्रति श्रद्धा और अन्तमें संयमके विषयमें बल–पराक्रमको लगाना यह उत्तरोत्तर अति-अति दुर्लभ है—ऐसा जानकर उपरोक्त चार परम मंगलमेंसे प्राप्त हुए मनुष्यपनेको शेष तीन परम मंगलसे अलंकृत करो, सुशोभित करो!'' राजपद तो क्या परन्तु उससे भी उत्कृष्ट अनुपम लक्ष्मीके हेतुभूत धर्मको प्राप्त करनेके इस दुर्लभ मौसममें कुसका (विनाशी विभूति) लेनेकी ओर दौड़कर व्यर्थकाल गँवाना यह सुबुद्धिमानको योग्य नहीं है। राज्यादि क्षणभंगुर चपल विभूतियाँ तो धर्ममार्ग पर प्रयाण करते हुए बीच-बीचमें सहज ही मिल जायँगीं। उस ओरकी अति उन्मत्त आतुरता छोड़ो। ६७.

(श्री आत्मानुशासन)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

❀ शरीरके एक-एक रोममें ९६-९६ रोग हैं, यह शरीर क्षणमें दगा देगा, क्षणमें छूट जायगा। कुछ सुविधा हो वहाँ घुस जाता है, परन्तु भाई! तुझे कहीं जाना है वहाँ किसका मेहमान होगा? कौन तेरा परिचित होगा? उसका विचार करके अपना तो कुछ कर ले! शरीर अच्छा हो तबतक आँख खुलती नहीं है और क्षणमें शरीर छूटने पर अनजान स्थानमें चला जायगा! छोटी-छोटी उम्रके भी चले जाते हैं। इसलिये अपना कुछ कर ले। शास्त्रमें कहा है कि जबतक वृद्धावस्था न आये और इन्द्रियाँ जबतक शिथिल न हो जायँ तबतक आत्महित कर लेना। ६८.

(दृष्टिके निधान)

❀ समस्त लोकका सार निःसार है ऐसा समझकर तथा संसार अनन्त अपार है ऐसा जानकर, लोकके अग्र शिखर पर निवास करना ही सुखकारी तथा निरुपद्रव है, ऐसा प्रमाद छोड़कर चिन्तन करो अर्थात् मोक्षस्थान ही इस लोकमें सार तथा पूर्ण निरुपम सुखका स्थान है ऐसा समझकर उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। ६९.

(श्री मूलाचार, लोकानुप्रेक्षा)

❀ हे भव्य! यदि तुझे अपना अपकार करनेवालेके उपर क्रोध आता है तो तू इस क्रोधके उपर ही क्रोध क्यों नहीं करता? कारण के वह तो तेरा सबसे अधिक अपकार करनेवाला है। वह तेरे धर्म अर्थ और कामरूप त्रिवर्गको मोक्ष पुरुषार्थको और यहाँ तक कि तेरे जीवितको भी नष्ट करनेवाला है। फिर भला इससे अधिक अपकारी और दूसरा कौन हो सकता है? कोई नहीं। ७०. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ इस लोकमें गृह, चंद्र, सूर्य, तारे तथा छह ऋतु आदि सब ही जाते और आते हैं अर्थात् निरंतर गमन आगमन करते रहते हैं। परंतु जीवोंके गये हुए शरीर स्वप्नमें भी कभी लौटकर नहि आते। यह प्राणी वृथा इनसे प्रीति करता है। ७१. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ मनुष्य मनमें प्रतिदिन अपने कल्याणका ही विचार करता है, परन्तु आया हुआ भवितव्य (दैव) वही करता है जो उसे रुचता है। इसलिये सज्जन पुरुष राग-द्वेषरूपी विषरहित होकर मोहके प्रभावसे अत्यन्त विस्तारको प्राप्त होनेवाले अनेक विकल्पोंका त्याग करके सदा सुखपूर्वक स्थिति करो। ७२. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ संसारको अनित्य, दुःखोंका घर व असार विचारें, शरीरको अपवित्र व नाशवंत सोचें व इन्द्रियभोगोंको क्षणभंगुर व अतृप्तिकारी जानें। संसारकी सर्व पर्यायें त्यागने योग्य हैं, केवल एक शुद्ध आत्माकी परिणति ही ग्रहण करने योग्य है। ऐसा वैराग्य जिसको होगा वही मोक्षप्राप्ति करनेका प्रेमी होगा। ७३. *(श्री ममलपाहुड़)*

❀ इस संसारमें समस्त पदार्थ विषय अर्थात् भोग्य वस्तु हैं। उन सर्वका योग महा पुण्यवानोंको भी सर्वांगरूपसे नहीं मिलता अर्थात् ऐसा कोई पुण्य ही नहीं है कि जिसके द्वारा सर्व मनोवांछित (पदार्थ) प्राप्त हो। ७४. *(श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

❀ हे मूर्ख प्राणी! संसारके भीतर होनेवाले दुखोंसे तुझे वैराग्य क्यों नहीं आता है जिससे तू इस संसारमें विषयोंके भीतर फँसा हुआ लोभ द्वारा जीत लिया गया है? ७५. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ हे विद्वज्जनो! धन, महल और शरीरादिके विषयमें ममत्वबुद्धि छोड़कर शीघ्रतासे कुछ भी अपना ऐसा कार्य करो कि जिससे यह जन्म पुनः प्राप्त नहीं करना पड़े। अन्य सैंकड़ों वचनोंके बाह्य देखावसे तुम्हारा कुछ भी इष्ट सिद्ध होनेवाला नहीं है। यह जो तुम्हें उत्तम मनुष्यपर्याय आदि स्वहितसाधक सामग्री प्राप्त हुई है वह फिरसे प्राप्त होगी अथवा नहीं होगी वह कोई निश्चित नहीं है अर्थात् उसका पुनः प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। ७६. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ तत्काल प्राणोंको हरनेवाला विष खा लेना अच्छा, भयंकररूपसे

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सुलगती हुई अग्निमें प्रवेश करके जलकर राख हो जाना अच्छा और अन्य किसी कारण द्वारा यमराजकी गोदमें समा जाना अच्छा, परन्तु तत्त्वज्ञानसे रहित होकर इस संसारमें जीना अच्छा नहीं है। ७७.

(श्री सुभाषित रत्नसंदोह)

❀ हे जीव! आत्मकल्याण हेतु कुछ प्रयत्न कर! कर! क्या मूर्ख होकर प्रमादी बन रहा है? जब वह काल अपनी तीव्र गतिसे आ पहुँचेगा तब यत्न करने पर भी वह रुकेगा नहीं—ऐसा तू निश्चय समझ। कब, कहाँसे और किस प्रकार वह काल अचानक आ चढ़ेगा उसकी भी किसीको खबर नहीं है। वह दुष्ट यमराज जीवको कुछ भी सूचना दिये बिना अचानक हमला करता है उसका तो कुछ ख्याल कर! कालकी अप्रहत अरोक गतिके सामने मंत्र, तंत्र तथा औषधादि सर्व साधन व्यर्थ हैं। ७८. (श्री आत्मानुशासन)

❀ देखो! इन जीवोंका प्रवर्तन कैसा आश्चर्यकारक है कि शरीर तो प्रतिदिन छीजता जाता है और आशा नहि छीजती है; किन्तु बढती जाती है, तथा आयुर्बल तो घटता जाता है और पापकार्योंमें बुद्धि बढती जाती है, मोह तो नित्य स्फूरायमान होता है और यह प्राणी अपने हित वा कल्याणमार्गमें नहीं लगता है। सो यह कैसा अज्ञानका माहात्म्य है! ७९.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ तूने करोड़ों भवोंमें जो बहुत कर्म बांधे हैं उनको नाश करनेके लिये यदि तू सामर्थ्य न प्रगट करेगा तो तेरा जन्म निष्फल ही बीत गया ऐसा समझा जायेगा। ८०. (श्री सारसमुच्चय)

❀ बहुत बीत गई, थोड़ी सी रह गई, ऐसा अपने हृदयमें विचार करो। अब किनारेके अत्यन्त समीप हो, अब भी यदि भूल की तो संसार-समुद्रमें डूबना ही पड़ेगा। ८१. (श्री बुधजन-सतसई)

❀ जिन रामकी कीर्तिध्वजा तीनों लोकमें प्रख्यात थी उन रामको भी जिसने नष्ट कर डाला उस मृत्युकी अन्य प्राणीयोंको मारनेकी कथा ही व्यर्थ है क्योंकि जो नदीका प्रवाह हाथीको बहा ले जाता है उसके लिये खरगोशको न बहा ले जाना कैसे संभव है? ८२.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ कितने ही मनुष्य सदा महान शास्त्र समूहमें परिभ्रमण करते हैं तथापि अर्थात् अनेक शास्त्रोंका परिशीलन करते हैं फिर भी वे उत्कृष्ट आत्मतत्त्वको लकड़ीमें शक्तिरूपसे विद्यमान अग्निसमान जानते नहीं हैं। ८३. (श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ जिसके रागवश जीव अनादिकालसे संसारी बनकर अनन्त दुःखका अनुभव कर रहा है तथा जिसके आत्यंतिक क्षयसे अनन्त संसार दुःखोंसे मुक्त हुआ जाता है ऐसा कोई मुख्य पदार्थ हो तो मात्र शरीर ही है, तो अब उस शरीरको एकबार ऐसा छोड़ना चाहिये कि जिससे पुनः उत्पन्न ही न हो। वैसे अन्य छोटी-छोटी नहीं जैसी क्षुद्र बातोंकी ओर एकान्त ध्यान देनेसे क्या सिद्धि है? ८४.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ हे जीव! कुटुम्बी आदि लोगोंका तेरे साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है और न तेरा उनके साथ इस लोक सम्बन्धी कोई प्रयोजन है। वे तो अपने स्वार्थवश तेरे शरीरके प्रति प्रेम रखते हैं इसलिये तू अपने आत्महितमें मग्न हो। वे लोग शरीरमें तन्मय हो रहे हैं, इसलिये शरीर जैसे ही जड़बुद्धि हैं और तू चैतन्य है, उनसे भिन्न है, इसलिये राग-द्वेषका सम्बन्ध तोड़कर अपना आत्मबल प्रगट कर और सुखी हो। ८५.

(श्री नाटक समयसार)

❀ जिस संसारमें अनेक उपायोंसे पालन पोषण करके बढ़ाई हुई भी यह देह भी अपनी नहीं होती है वहाँ पूर्वमें बांधे हुए अपने अपने

www.vitragvani.com

कर्मोंके वश पडे हुए पुत्र, स्त्री, मित्र, पुत्री, जमाई व पिता आदिक बिलकुल जुदे पदार्थ किन जीवोंके अपने प्रगटपने हो सकते हैं? ऐसा जान कर बुद्धिमान मानवको सदा अपनी बुद्धि अपने आत्मामें स्थिर करनी उचित है। ८६. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ जिस घरमें प्रभातके समय आनन्दोत्साहके साथ सुंदर सुंदर मांगलिक गीत गाये जाते हैं, मध्याह्नके समय उसी ही घरमें दुःखके साथ रोना सुना जाता है।

प्रभातके समय जिसके राज्याभिषेककी शोभा देखी जाती है उसी दिन उस राजाकी चिताका धूआं देखनेमें आता है। यह संसारकी विचित्रता है। ८७. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ हे जीव! नरकादि कुयोनियोंमें तूने जो दुःख सहे उनके अनुभवकी बात तो दूर रही, परन्तु उन दुःखोंका स्मरणमात्र भी महान व्याकुलता उत्पन्न करता है। इस मानवभवमें निर्धन होनेपर भी तू नाना प्रकारके भोगोंका अभिलाषी होता हुआ कामसे पूर्ण जो स्त्री उसके मन्द-मन्द हास्य, तीक्ष्ण कटाक्ष एवं कामके तीव्र बाणसे विंधा हुआ बर्फसे जले हुए वृक्ष जैसी दशाको प्राप्त हुआ है यही महान दुःखका तो तू विचार कर! ८८. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जहाँ प्राणी बारम्बार अनेक प्रकारकी अवस्थाओंरूप वेशोंकी भिन्नतासे नटसमान आचरण करता है ऐसे उस संसारमें यदि इष्टका संयोग होता है तो उसका वियोग अवश्य होना चाहिये; यदि जन्म है तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये; यदि सम्पत्ति है तो विपत्ति भी अवश्य होनी चाहिये तथा यदि सुख है तो दुःख भी अवश्य होना चाहिये। इसलिये सज्जन मनुष्यको इष्टसंयोगादि होने पर तो हर्ष और इष्ट वियोगादि होनेपर शोक भी नहीं करना चाहिये। ८९. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ कठिन परिश्रम करके यत्नसे किये गये संसारके समस्त कार्य,

पानीमें मिट्टीकी पुतलीकी भाँति, क्षणभरमें बिलकुल नष्ट हो जाते हैं। जब ऐसा है तब हे मूर्ख! अति खेदकी बात है कि उस सांसारिक कार्यकी ही प्रवृत्ति किसलिये की जाती है? बुद्धिमान् प्राणी निरर्थक परिश्रम करानेवाले कार्यमें कभी भी निश्चयसे व्यापार नहीं करते। ९०.

(श्री तत्त्वभावना)

❀ जैसे मुट्ठी द्वारा आकाश पर प्रहार करना निरर्थक है, जैसे चावलके लिये भूसेको कूटना निरर्थक है, जैसे तेलके लिये रेतको पेलना निरर्थक है, जैसे घीके लिये जलको विलोना वह निरर्थक है, मात्र महान खेदका कारण है। वैसे ही असातावेदनीयादि अशुभ कर्मका उदय आनेपर विलाप करना, रोना, क्लेषित होना, दीन वचन बोलना निरर्थक है—दुःख मिटानेमें समर्थ नहीं है, परन्तु वर्तमानमें दुःख बढ़ाता है और भविष्यमें तिर्यंचगति तथा नरक-निगोदके कारणभूत तीव्र कर्म बाँधता है जो अनन्तकालमें भी नहीं छूटते। ९१. *(भगवती आराधना)*

❀ दूसरेको ठग लूंगा ऐसा विचारकर जो कोई मायाचारका उपाय करते हैं उन लोगोंने इसलोक तथा परलोक दोनोंमें सदा ही अपने आपको ठगा है। ९२. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ अपना हित होता देखकर स्वहित कर ही लेना चाहिये, इसमें विलम्बन नहीं करना चाहिये। बहते पानीमें हाथ धो लेना चाहिये। क्योंकि अवसर पुनः पुनः प्राप्त नहीं होगा। ९३.

(श्री बुधजन-सतसई)

❀ हे भव्यजनो! अधिक कहनेसे क्या लाभ? जो गृह, स्त्री, पुत्र एवं जीवनादि सर्व प्रताड़ित ध्वजावस्त्रके छोर समान चंचल हैं, उनके विषयमें तथा धन और मित्रादिके विषयमें मोह छोड़कर धर्ममें बुद्धि लगाओ। ९४. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

www.vitragvani.com

❀ समुद्रमें रहनेवाला वडवानल (अग्नि) समुद्रके जलको शोष लेता है, वैसे ही संसारमें मानसिक दुःखरूपी भयंकर वडवानल इतना अधिक दुःखप्रद है कि वह जीवको प्राप्त हुए विषय भी सुखसे नहीं भोगने देता और अप्राप्त विषयोंकी लालसा ही लालसामें सदोदित जलाता रहता है और इस प्रकार उसके शांतभावरूप निज-प्राणको प्रतिपल शोषित करता रहता है। ९५. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जिस जीवने जिस तरहसे जब जहां जो सुख-दुःख प्राप्त करना होता है, उस जीवको उस तरहसे, उस स्थानमें, उस कालमें, वह सुख-दुःख दैवके नियोगसे अवश्य प्राप्त होता है। पूर्वकालमें जीवने जो अच्छा या बुरा कर्म किया और इस समय वह पक कर फल देनेके सन्मुख हुआ तो उसको किंचित् भी अन्यथा करनेमें इन्द्र भी किसी तरह समर्थ नहीं है अर्थात् किये हुए कर्मका फल जीवको अवश्य भोगना होता है। कोई दूसरा उसमें कुछ भी हेरफेर नहीं कर सकता। ९६.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ हे भव्य! यदि तुझे अपने साथ अपकार करनेवालेके प्रति क्रोध आता है तो तू उस क्रोधके प्रति क्रोध क्यों नहीं करता? क्योंकि वह क्रोध तो तेरा सबसे अधिक अपकार करनेवाला है। वह क्रोध तेरे धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गको तथा मोक्षके पुरुषार्थको और यहाँ तक कि तेरे जीवनको भी नाश करनेवाला है। तो फिर इससे अधिक अपकारी अन्य कौन हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं। ९७.*(श्री क्षत्रचूड़ामणि)*

❀ ज्ञेयरूप परद्रव्यका दोष न देखो–न जानो कि परज्ञेयकी सन्निधि (निकटता) निमित्तमात्र देखकर मेरे द्रव्यको इसने मलिन किया है; इस प्रकार यह जीव स्वयं मिथ्या भ्रम करता है। परन्तु उस पर ज्ञेयका तूने कभी स्पर्श ही नहीं किया है तथापि तू उसका दोष देखता है–जानता है वह तेरा हरामीपना (दुष्टता, बदमाशी) है। इस प्रकार एक तू ही

झूठा है, उसका कोई दोष नहीं है वह सदा सच्चा है। ९८.

(श्री आत्मावलोकन)

❀ जो संसाररूपी वन रक्षकोंसे रहित है उसमें अपने उदयकाल आदिरूप पराक्रमसे संयुक्त ऐसे कर्मरूपी वाघ द्वारा ग्रसित यह मनुष्यरूपी पशु 'यह मेरी प्रिया है, यह मेरे पुत्र हैं, यह द्रव्य मेरा है और यह घर भी मेरा है'–इस प्रकार 'मेरा-मेरा' कहता हुआ मृत्यु प्राप्त करता है। ९९. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ परकृत निन्दा, अपमान और तिरस्कार दर्शानेवाले वचन नहीं सहन होनेसे उन्हें नहीं सुननेकी इच्छा रखते हुए तेरे कान श्रवण करनेकी शक्तिसे रहित हुए, तेरी यह निंद्य परवश दशा प्रत्यक्ष देखनेको तेरे नेत्र असमर्थ अर्थात् अंध दशाको प्राप्त हुए, तुझे अत्यन्त प्रिय ऐसा तेरा शरीर भी मानों सन्मुख आ रहे कालके भयसे थरथर काँपता है—ऐसे जरा (वृद्धावस्था)से जीर्ण हो रहे और अग्निसे जल रहे घरके समान इस मनुष्य शरीरमें हे जीव! तू क्या निश्चल होकर बैठा है? १००.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ यह मेरा अनिष्ट अथवा इष्ट चिन्तन करता है, यह बुद्धि-विचार निरर्थक है, (क्योंकि) दूसरेकी चिन्तासे दूसरा पीड़ित या पालित नहीं होता। १०१. *(श्री योगसार प्राभृत)*

❀ विवेकरहित अज्ञानी जीव स्वयं पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके ऊपर तो क्रोध करता नहीं है, परन्तु उन कर्मोंकी निर्जरा करानेवाले पुरुष पर क्रोध करता है। अर्थात् वैद्य समान अपनी चिकित्सा करनेवाले पर क्रोध करता है परन्तु यह पद्धत्ति किसी प्रकार योग्य नहीं है, क्योंकि अपने कर्मोंकी निर्जरा कराये वह तो वैद्यकी भाँति अपना उपकारी है, उसका तो उपकार ही मानना चाहिये। उस पर क्रोध करना बहुत बड़ी भूल है तथा कृतघ्नता है। १०२. *(श्री ज्ञानार्णव)*

www.vitragvani.com

❀ यदि कोई जीव अप शब्दोंका प्रयोग करता है तो विवेकी साधु ऐसा विचारते हैं कि इस मनुष्यने मुझे क्रोधवश मात्र गाली ही दी है, मारा तो नहीं है। यदि वह मारने लग जाय तो वे साधु ऐसा विचारते हैं कि उसने मुझे मात्र मारा ही है, प्राणोंका नाश तो नहीं किया है। परन्तु यदि वह प्राणोंका नाश करनेमें उद्यत हो जाय तो वे ऐसा विचारते हैं कि इसने क्रोधके वशीभूत होकर मात्र मेरे प्राणोंका ही नाश किया है परन्तु मेरे प्रिय धर्मका तो नाश नहीं किया; इसलिये मुझे इस बेचारे अज्ञानी प्राणी पर क्रोध करना उचित नहीं है, क्योंकि क्रोध धर्मका नाश और पापका संचय करता है। ऐसा समझकर बुद्धिमान् साधु क्षमा ही करते हैं। १०३. *(सुभाषित-रत्नसंदोह)*

❀ परमार्थके साधे बिना मूर्खजन अपने जीवनको नष्ट कर देते हैं। जैसे पतंग उड़ानेवाला केवल समय नष्ट करता है, कमाई कुछ भी नहीं करता। १०४. *(श्री बुधजन-सतसई)*

❀ अपने दुष्ट अशुभ भावोंसे जो कर्म पहले बांधा जा चुका है उसके उदय आने पर कौन बुद्धिमान दूसरों पर क्रोध करेगा? १०५.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ जीव अपने उपार्जित कर्मोंके सिवा कोई भी किसीको भी कुछ भी देता नहीं है ऐसा विचार कर, दूसरा कोई देता है ऐसी बुद्धि छोड़कर, आत्मा द्वारा अपने अनन्यपनेका विचार करना। १०६.

(सामायिक पाठ)

❀ यदि क्रोधाग्नि द्वारा मन कलुषित हो जाय तो, निरंजनतत्त्वकी ऐसी भावनारूप निर्मल जल द्वारा आत्माका अभिषेक करना—कि जहाँ जहाँ देखूँ वहाँ कुछ भी मेरा नहीं है; मैं किसीका नहीं हूँ और कोई मेरा नहीं है। (ऐसी तत्त्वभावना द्वारा क्रोध शांत हो जाता है।) १०७.

(श्री पाहुड़ दोहा)

❀ यदि दुर्जन मनुष्य मेरे दोष प्रगट करके सुखी होता हो तो होओ, यदि धनका अभिलाषी मनुष्य मेरा सर्वस्व ग्रहण करके सुखी होता हो तो होओ, यदि शत्रु मेरा जीवन लेकर सुखी होता हो तो होओ, यदि अन्य कोई मेरा स्थान लेकर सुखी होते हों तो होओ तथा जो मध्यस्थ हैं—राग-द्वेषरहित हैं—वे ऐसे ही मध्यस्थ बने रहें। यहाँ, सम्पूर्ण जगत अतिशय सुखका अनुभव करो, मेरे निमित्तसे किसी भी संसारी प्राणीको किसी भी प्रकार दुःख न होओ, ऐसा मैं उच्च स्वरसे कहता हूँ। १०८. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ किसीको फाँसीका ऑर्डर हुआ हो और उसे जब फाँसीके कमरेमें ले जाते हैं तो भयसे कैसा काँपने लगता है! उसी प्रकार जो संसारके भयसे भयभीत हो गया हो उसके लिये यह (तत्त्वकी) बात है। १०९. *(दृष्टिके निधान)*

❀ विषय भोगोंको सदा भोगते रहे, पुण्योपार्जन कभी भी नहीं किया। यहाँ यह कहावत चरितार्थ होती है कि बाजारमें आकर भी कुछ नहीं कमाया, जो कुछ गांठमें था उसे भी खोकर निर्धन वापस चले गये। ११०. *(श्री बुधजन-सतसई)*

❀ जो व्यक्ति मरणके संनिकट होने पर भी पुण्यका लाभ नहीं करता है वह मानवजन्म पाकरके भी अपना जन्म बेकार खो देता है यह बड़े खेदकी बात है। १११. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ इस संसारमें अनादिकालसे फिरते हुए जीवोंने समस्त जीवोंके साथ पिता, पुत्र, भ्राता, माता, स्त्री, आदि संबंध अनेकवार पाये हैं। ऐसा कोई भी जीव वा संबंध बाकी नहीं रहा, जो इस जीवने न पाया हो। ११२. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ हे विषयके लोलुपी! तू अविचार पूर्वक असि, मसि, कृषि, और वाणिज्यादि उद्यम करके इस लोकमें धन प्राप्त करने हेतु बारम्बार क्लेश

www.vitragvani.com

करता रहता है। वैसा ही प्रयत्न यदि तू एकबार सम्यक् प्रकारसे परलोक हेतु करे तो जन्म-मरणका अनादि भयंकर दुःख पुनः पुनः प्राप्त न हो। भाई! इस कथन पर विश्वास करके, तू धनादि विनाशीक सम्पदा प्राप्त करनेका भयंकर दुःख छोड़कर एकबार यथार्थ धर्मसाधन साध्य करनेका प्रयत्न कर! ११३. (श्री आत्मानुशासन)

❀ संसारमें सर्वत्र उत्पन्न हुए जीवोंको उनके द्वारा पूर्वभवमें किया गया पुण्य-पाप ही सुख अथवा दुःख देता है, उसे रोकना शक्य नहीं है। प्राणीयोंको उनका भाग्य द्वीपमें, समुद्रमें, पर्वतके शिखर पर, दिशाके अंतमें और कूपमें भी गिरे रत्नको मिला देता है। इस संसारमें पुण्यशाली जीवोंकी विपदा भी संपदा बन जाती है और पापकर्मके उदयसे संपदा भी विपदा बन जाती है। ११४. (श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ किसीने मुझे मारा और जो मैं रोष नहि करूँ तो मारनेवालेकी तो हानि हुई अर्थात् पापबंध हुआ परंतु मेरे आत्माके अर्थकी सिद्धि हुई अर्थात् पाप नहि बंधा किंतु पूर्वके किये पापोंकी निर्जरा हुई, इसमें कोई संदेह नहि है। और मेरे कदाचित् रोष ऊपजे तो मेरी द्विगुण हानी हो अर्थात् एक तो पापबंध हो दूसरा पूर्व कर्मोंकी निर्जरा नहीं हो। इत्यादि विचार करें। ११५. (श्री ज्ञानार्णव)

❀ भाई! इस समय तो अपना कार्य कर लेने जैसा है। अरे! माता-पिता, भाई-बहिन सगे-सम्बन्धी आदि अनेक कुटुम्बीजन मरकर कहाँ गये होंगे? उसकी कुछ खबर है? अरे! मुझे अपने आत्माका हित कर लेना है—ऐसा उसे अंतरसे लगना चाहिये। अहाहा! सगे-सम्बन्धी सब चले गये, उनके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव सब फिर गये। शरीरके अनन्त रजकण कब कहाँ कैसे होंगे उनकी है कोई खबर? इसलिये जो जागता रहेगा वह बचेगा। ११६. (दृष्टिके निधान)

❀ युद्धमें राजाके रथ, हाथी, घोड़े, अभिमानी योद्धा, मंत्र शौर्य और तलवार;—यह सब अनुपम सामग्री, तबतक ही कार्य सिद्ध कर सकती है जबतक दुष्ट भूखा यमराज (मृत्यु) क्रोधित होकर मारनेकी इच्छासे दौड़ता हुआ सामने नहीं आता। इसलिये विद्वान् पुरुषोंको उस यमसे अपनी रक्षा करने हेतु अर्थात् मोक्षप्राप्तिके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। ११७. (श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ विधि-दैव-भाग्य भुजंगके समान टेढा चलता है। कभी वैभवके शिखर पर चढ़ता है तो कभी विपत्तिकी खाईमें गिरता है। आज श्रीमंत है तो कल दरिद्री बनकर घूमता फिरता है। जीवन पवनवेगकी तरह चंचल है। धन कमानेमें कष्ट, उसकी रक्षा करनेमें कष्ट, अंतमें किसी कारणसे धनका वियोग होने पर यह जीव अति कष्टि होता है। यौवन शीघ्र ही नष्टप्राय होता है। तथापि यह जीव संसारकी नानाविध संकट-परंपरासे भयभीत होता नहीं। यह बड़ा आश्चर्य है। ११८.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ मुनि ऐसी भावना करे—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक, इन तीनों लोकमें मेरा कोई भी नहीं है, मैं एकाकी आत्मा हूँ, ऐसी भावनासे योगी मुनि प्रकटरूपसे शाश्वत सुखको प्राप्त करता है। ११९.

(श्री मोक्षपाहुड)

❀ यदि अपना कोई कुटुंबीजन अपने कर्मवशात् मरणको प्राप्त हो जाता है तो नष्टबुद्धि मूर्खजन उसका शोच करते हैं; परंतु आप स्वयम् यमराजकी दाढोंमें आया हुआ है इसकी चिंता कुछ भी नहीं करता है यह बड़ी मूर्खता है। १२०. (श्री ज्ञानार्णव)

❀ हे मित्र! तू परवस्तुकी अभिलाषारूप अति वेगवान नदीका बहाया हुआ अनादिकालसे अनेक जन्म धारण करते-करते अत्यन्त दूरसे यहाँ तक आया है वह क्या तू नहीं जानता? वह आशारूपी महानदी इतनी गहरी, गम्भीर और वेगवान है कि अन्य किसी भी उपायसे दुर्लंघ्य

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। मात्र एक आत्मबोध द्वारा ही तू उसे तैर सके ऐसा है। १२१.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ कहीं रुकना नहीं। विकल्पका कुछ भी खटक बना रहेगा तब तक भीतर नहीं जा सकेगा। इस समय जवानी है इसलिये कमाई कर लूँ—यह बात रहने दे भाई! मौत सिर पर नौबत बजा रही है। फिर करूँगा, फिर करूँगा;–ऐसा रहने दे। अंतरमें कोई भी विकल्प रहेगा कि यह कर लूँ....यह कर लूँ....ऐसे वादे करेगा तो भीतर नहीं जा सकेगा। १२२. *(दृष्टिके निधान)*

❀ एक अपने आत्माके सिवा अन्य कोई शत्रु नहीं है; इसलिये हे योगी! जिस भावसे तूने कर्मोंका निर्माण किया उस परभावको तू मिटा दे। १२३. *(श्री पाहुड़ दोहा)*

❀ यदि कभी एक दिन भोजन नहीं मिलता अथवा रात्रिको नींद नहीं आती तो जो शरीर निश्चयसे निकटवर्ती अग्निसे संतप्त हुए कमल-पत्रकी भाँति म्लान हो जाता है तथा जो अस्त्र, रोग और जल आदि द्वारा अकस्मात नष्ट हो जाता है, उस शरीरके विषयमें हे भाई! स्थिरताकी बुद्धि कहाँसे हो सकती है? और उसका नाश हो जाय उसमें आश्चर्य ही क्या है? अर्थात् उसे न तो स्थिर समझना चाहिये और न ही उसके नष्ट होनेपर कोई आश्चर्य होना चाहिये। १२४.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ मेरा स्वशरीर भी जिसके (मेरे आत्माके) अनुपकार–उपकारमें समर्थ नहीं है उसका अनुपकार–उपकार दूसरे करते हैं ऐसा मानना मेरे लिये व्यर्थ है। १२५. *(श्री योगसार प्राभृत)*

❀ हे प्राणी! तू यह निर्णय कर कि कौन तेरा पुत्र है कौन तेरी स्त्री है, और किसका परिवार है। जैसे मुसाफिर सराय (धर्मशाला)में

आकर इकट्ठे हो जाते हैं और कुछ ही समयमें एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं उसी प्रकार तुझे भी इन सबसे अवश्यमेव बिछुड़ना होगा। १२६.

(श्री बुधजन-सत्सई)

❀ जैसे कोई पुरुष निर्मल जलकी अभिलाषासे कुआँ खोदने लगा; खोदते-खोदते नीचे शिला निकली, परन्तु स्वयं आरम्भ किया हुआ कार्य सिद्ध करनेके लिये वह आगे-आगे खोदने लगा; बड़े ही परिश्रम और दीर्घकालके पश्चात् थोड़ा सा जल मिला, परन्तु वह खारा, दुर्गन्धयुक्त तथा कृमियोंसे खदबदाता हुआ निकला, और वह भी तुरन्त सूख गया। कहो, उस पुरुषने उद्यम करनेमें कहाँ क्या कमी रखी थी? परन्तु उदयकी चेष्टा ही दुःखदायी है। निश्चयसे उस तृषातुर मनुष्यकी तृषा किसी भी कालमें पूर्ण होनेवाली नहीं है। कारण उदयकी गति बलवान है। १२७.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ अज्ञानी जीवोंको परके दोष ग्रहण करनेसे हर्ष होता है; मेरे दोष ग्रहण करके जिन जीवोंको हर्ष होता है तो मुझे यही लाभ है कि मैं उनको सुखका कारण हुआ, ऐसा मनमें विचारकर गुस्सा छोड़ो। १२८. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ हे मूढ दुर्बुद्धि प्राणी! तू जो किसी की शरण चाहता है सो इस त्रिभुवनमें ऐसा कोई भी शरीरी (जीव) नहि है कि जिस के गलेमें कालकी फांसी नहीं पडती हो। समस्त प्राणी कालके वश हैं। १२९.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ तुम्हारे सियानेपनको धिक्कार है क्योंकि तुमने अत्यन्त असावधान रहकर सारहीन जीवन व्यतीत कर दिया। अब भी सावधान हो जाओ, अन्यथा मृत्युका समय आ रहा है। १३०.

(श्री बुधजन-सत्सई)

www.vitragvani.com

❀ पूर्वकर्मोंके उदयसे आपत्तियोंके आ जाने पर वीरता ही परम रक्षक है। बारबार शोच करना उचित नहीं है। १३१.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ यह शरीर पानीके बुलबुलेकी भाँति क्षणमें नष्ट होनेवाला है, लक्ष्मी इन्द्रजाल समान विनश्वर है; स्त्री, धन और पुत्रादि दुष्ट वायुसे ताड़ित बादलोंकी भाँति देखते ही देखते विलीन हो जाते हैं तथा इन्द्रिय-विषयजन्य सुख सदा कामोन्मत्त स्त्रीके कटाक्षोंकी भाँति चंचल है। इस कारण इन सबके नाशमें शोक तथा इनकी प्राप्तिमें हर्ष करनेसे क्या प्रयोजन है?–कुछ भी नहीं। अभिप्राय यह है कि यदि शरीर, धन-सम्पत्ति, स्त्री, पुत्रादि समस्त चेतन-अचेतन पदार्थ स्वभावसे ही अस्थिर हैं तो विवेकी मनुष्योंको उनके संयोगमें हर्ष और वियोगमें शोक नहीं करना चाहिये। १३२. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ परके द्वारा मेरे गुण (पर्याय) किये या हरे नहीं जा सकते और मेरे द्वारा परके गुण उत्पन्न या नष्ट नहीं किये जा सकते। इसलिये परके द्वारा मेरे गुण और मेरे द्वारा परके कोई गुण उपकार किये जाते हैं अथवा नहीं किये जाते–यह सब कल्पना मिथ्या है जो कि मोहसे अभिभूत जीवों द्वारा की जाती है। १३३. *(श्री योगसार प्राभृत)*

❀ तीनलोकमें इस जीवको जो भी कुछ सुख अथवा दुःख (सांयोगिक सुख-दुःख) होते हैं वे सब दैवके प्रभावसे होते हैं, अन्यसे नहीं। ऐसा समझकर जो शुद्ध बुद्धिवान पुरुष है वह कभी भी अपने मनकी शान्तिका भंग नहीं करता। १३४. *(श्री सुभाषित रत्नसंदोह)*

❀ संपत्ति यहीं पड़ी रहेगी, शरीर भी यहीं पड़ा रह जायेगा; तू चाहे कि मैं छलबल कर कालसे बच जाऊँगा, सो नहीं बच सकेगा। वह तो तुझे झपट कर ले जायेगा। १३५. *(श्री बुधजन-सतसई)*

❀ यह जगत इन्द्रजालवत् है, प्राणियोंके नेत्रोंको मोहनी-अंजन के

समान भुलाता है, और लोग इसमें मोहको प्राप्त होकर अपनेको भूल जाते हैं, अर्थात् लोक धोखा खाते हैं। अतः आचार्य महाराज कहते हैं कि हम नहि जानते ये लोग किस कारणसे भूलते हैं! यह प्रबल मोहका माहात्म्य ही है। १३६. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ पूर्वकर्मोंके उदयसे पीडा हो जाने पर उसके लिये शोच करना ऐसा ही है जैसे कोई वृद्ध बैल अपनेसे ही अपनेको काट ले फिर पूंछसे अपनेको ही मारे। १३७. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ यहाँ अधिक क्या कहना? अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियोंसे स्वस्थ मनवाले यो शक्तिशाली इन्द्रादि देव थे वे भी मात्र एक शत्रु द्वारा नाशको प्राप्त हुए हैं। वह शत्रु भी रावण राक्षस था जो उन इन्द्रादिकी अपेक्षा कुछ भी नहीं था। तथा वह रावण राक्षस भी राम नामके मनुष्य द्वारा समुद्रको पार करके मारा गया। अन्तमें वे राम भी यमराजका विषय बन गये अर्थात् उनको भी मृत्युने नहीं छोड़ा। बराबर है, दैवसे अधिक बलवान दूसरा कौन है? अर्थात् कोई भी नहीं। १३८.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ काल आने पर वर्षा होती है, काल आने पर वृक्ष खिलते हैं, काल आने पर चन्द्रमाका उदय होता है, पशु भी समय आने पर घर आते हैं, स्वातिनक्षत्रके कालमें सीपमें पानीकी बूँद पड़नेसे मोती बनती है, वैसे ही उत्तम देव-गुरुके महान योग-कालमें तू आया और पूज्य पदार्थ अनुभवमें न आये वह अजब तमाशा है! १३९. *(दृष्टिके निधान)*

❀ शत्रु हो वह भी उपकार करनेसे मित्र बन जाता है, इसलिये जिसे दान सन्मान आदि दिये जायँ वह शत्रु भी अपना अत्यन्त प्रिय मित्र बन जाता है। तथा पुत्र भी उसकी इच्छित सामग्री रोकने तथा अपमान तिरस्कार आदि करनेसे क्षणमात्रमें अपना शत्रु हो जाता है। इसलिये संसारमें कोई किसीका मित्र या शत्रु नहीं है। कार्य अनुसार

www.vitragvani.com

मित्रपना और शत्रुपना प्रगट होता है। स्वजनपना, परजनपना, शत्रुपना और मित्रपना स्वभावसे किसीके साथ नहीं है। उपकार-अनुपकारकी अपेक्षा मित्रता-शत्रुता जानना। वस्तुतः कोई किसीका शत्रु-मित्र नहीं है। इसलिये किसीके प्रति रागद्वेष करना उचित नहीं है। १४०.

(भगवती आराधना)

❀ अपने किये हुए कर्मके फलानुबंधको स्वयं भोगनेके लिये तू अकेला जन्ममें तथा मृत्युमें प्रवेशता है, अन्य कोई (स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) सुख-दुःखके प्रकारोंमें बिलकुल सहायभूत नहीं होता; अपनी आजीविका हेतु (मात्र अपने स्वार्थकी पूर्ति हेतु स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगोंकी टोली तुझे मिली है। १४१. *(श्री यशस्तिलकचम्पू)*

❀ जो रात्रिमें संपत्तिके साथ सोते हैं वही प्रातःकाल निर्धन हो जाते हैं। संपत्ति सदाकाल एक समान नहीं रहती है। इसके संबंधमें किसीका अभिमान नहीं चलता। १४२. *(श्री बुधजन-सतसई)*

❀ जीवोंके देश, जाति, कुलादि सहित मनुष्यपना होते भी दीर्घायु, पांचों इन्द्रियोंकी पूर्ण सामग्री, विशिष्ट तथा उत्तमबुद्धि, शीतल मंदकषायरूप परिणामोंका होना काकतालीय न्यायके समान दुर्लभ जानना चाहिये। जैसे किसी समय ताडका फल पककर गिरे और उस ही समय काक आना हो एवम् वह उस फलको आकाशमें ही पाकर खाने लगे ऐसा योग मिलना अत्यन्त कठिन है। १४३. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ अनादिकालसे इस संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवके अपने कर्मवश कौन बांधव नहीं हुए और कौन शत्रु नहीं होंगे? अर्थात् अपने अपने कर्मवश सभी जीव एक दूसरेके मित्र और शत्रु हुए हैं और होंगे। फिर भी न जाने क्यों यह मनुष्य नवीन कुटुंबके मोहमें पड़कर आपत्तिमें पड़ता है और जैनधर्मको छोड़कर सदा अपने हितसे भ्रष्ट होता है, आत्महितमें नहीं लगता। १४४. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ अज्ञानी स्वयं अपनेको ठगता है और मानता है कि हम लाभमें हैं, इसप्रकार जगत अनादिसे ठगाया है। १४५. *(दृष्टिके निधान)*

❀ जिसके आधीन अपनी आत्मा नहीं है उसके आधीन दूसरे मानव कैसे हो सकते हैं? जिसके आधीन अपनी आत्मा है व जो शांत है उसके आधीन तीन लोक हो जाता है। १४६. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ कर्मोदयके वश, शत्रु हो वह तो मित्र बन जाता है तथा जो मित्र हो वह शत्रु हो जाता है। ऐसा ही संसारका स्वभाव है। १४७.

(श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा)

❀ जो मनुष्य यहाँ मृत्युके विषयको न तो भूतकालमें प्राप्त हुआ हो, न वर्तमानमें प्राप्त हो और न ही भविष्यमें प्राप्त होनेवाला हो, अर्थात् जिसकी मृत्यु तीनों कालमें सम्भव न हो वह यदि किसी प्रियजनका वियोग होनेपर शोक करे तो उसमें उसकी शोभा है। परन्तु जो कोई समयानुसार स्वयं ही मरणको प्राप्त होता है उसका अन्य किसी प्राणीकी मृत्यु होनेपर शोकाकुल होना अशोभनीय है। अभिप्राय यह है कि यदि समस्त संसारी प्राणी समयानुसार मृत्युको प्राप्त होते हैं तो एकको दूसरेकी मृत्यु होनेपर शोक करना उचित नहीं है। १४८. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ वास्तवमें वचन द्वारा कोई भी आत्मा निन्दा या स्तुतिको प्राप्त नहीं होता। मेरी निन्दा की गई है या स्तुति की गई है—ऐसा मोहके योगसे मानता है। १४९. *(श्री योगसार प्राभृत)*

❀ हे जीव! तू सब प्राणियोंमें मित्रताका भाव रख। किसीको शत्रु न समझ। उक्त सब प्राणियोंमें भी जो विशेष गुणवान हैं उनको देखकर हर्षको धारण कर, दुःखीजनके प्रति दयाका व्यवहार कर, जिनका स्वभाव विपरीत है उनके विषयमें मध्यस्थताका भाव धारण कर, जिनवाणीके सुनने और तदनुसार प्रवृत्ति करनेमें अनुराग कर। क्रोधरूप सुभटको पराजित कर, इन्द्रिय विषयोंसे विरक्त हो, मृत्यु एवम् जन्मसे उत्पन्न होनेवाले

www.vitragvani.com

अतिशय दुःखसे भयभीत हो और समस्त कर्ममलसे रहित मोक्षसुखकी अभिलाषा कर। १५०. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ मुनिराज ऐसी भावना करते हैं कि मैं कर्मसे पीडित हूं, कर्मोदयसे कोई दोष उत्पन्न हुआ है सो उस दोषको अभी कोई प्रगट करे और मुझे आत्मानुभवमें स्थापित करके स्वस्थ करें वही मेरा अकृत्रिम मित्र (हितैषी) है।

पुनः ऐसी भावना करते हैं कि जो कोई अपने पुण्यका क्षय करके मेरे दोषोंको कहता है उससे यदि मैं रोष करूँ तो इस जगतमें मेरे समान नीच वा पापी कौन है? १५१. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ न कोई देव है, न कोई देवी है, न कोई वैद्य है, न कोई विद्या है, न कोई मणि है, न कोई मंत्र है, न कोई आश्रय है, न कोई मित्र है, न कोई और राजा आदि इस तीन लोकमें है जो प्राणियोंके उदयमें आये हुए कर्मको रोक सके। १५२. *(श्री पद्मनंदि पंचविंशति)*

❀ अपने पीछे विकराल वाघ झपट्टा मारकर दौड़ता आ रहा हो तो स्वयं कैसी दौड़ लगाता है! वहाँ वह विश्रामके लिये खड़ा रहता होगा? वैसे ही यह काल झपट्टा मारकर दौड़ता चला आ रहा है और अंतरंगकार्य बहुतसे करना है ऐसा उसे लगना चाहिये! १५३.

(दृष्टिके निधान)

❀ जो कोई मेरा अनेक प्रकारके वधबंधनादि प्रयोगोंसे ईलाज नहि करें तो मेरे पूर्व जन्मोंके संचित किये असाता-कर्मरूपी रोगका नाश कैसे हो? भावार्थ–जो मुझे वधबंधनादिकसे पीडित करता है वह मेरे पूर्वोपार्जित कर्मरूपी रोगोंको नष्ट करनेवाला वैद्य है उसका तो उपकार मानना योग्य है, किंतु उससे क्रोध करना कृतघ्नता है। १५४. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ मेरे द्वारा जो रूप—शरीरादिरूपी पदार्थ दिखाई देते हैं वे—

अचेतन पदार्थ सर्वथा किसीको जाननेमें नहीं आता और जो जाननेवाला चैतन्यरूप आत्मा है वह दिखाई नहीं देता तो मैं किसके साथ बोलूँ–बातचीत करूँ? १५५. *(श्री समाधितंत्र)*

❀ जिस कारणसे पूर्व संचित कर्मोंका क्षय हो जावे व नवीन कर्मोंका संचय न हो वह काम मोक्षसुखके अभिलाषी आत्मज्ञानीको करनायोग्य है। १५६. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ मोहके कारण जिस पदार्थको इष्ट माना जाता है वही अनिष्ट तथा जिस पदार्थको अनिष्ट माना जाता है वही इष्ट हो जाता है। वास्तवमें कोई द्रव्य इष्ट या अनिष्ट नहीं है। १५७.

(श्री योगसार प्राभृत)

❀ जिनके गर्भावतरणसे पूर्व सर्वोत्कृष्ट ऋद्धिका स्वामी इन्द्र दो हाथ जोड़कर पूर्ण विनीत भावसे किंकरकी भाँति वंदन करता है, तथा जो महान आत्मा युगस्रष्टा हैं। चक्रवर्ती जैसे जिनके द्वार पर इकलौते विशिष्ट पुण्यवान पुत्र हैं–ऐसे श्री आदिनाथस्वामीने क्षुधावन्तरूपसे पृथ्वी पर घर-घर आहार हेतु परिभ्रमण किया। अहो! विधाता (कर्म)का विकास वास्तवमें आश्चर्यजनक लगता है, अतिशय अलंघ्य किसीसे मिटाया न जा सके ऐसा महासमर्थ है। १५८. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जिस मानवने मेरे आत्माके रूपको देखा ही नहीं है वह न मेरा शत्रु है न मित्र है व जिसने प्रत्यक्ष मेरे आत्माको देख लिया है वह महान मानव भी न मेरे शत्रु हो सकता, न मित्र। १५९.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ पुण्योदय सहित पुरुषको भी इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग होता देखा जाता है; देखो, अभिमान सहित भरत चक्रवर्ती भी अपने लघुभ्राता बाहुवलिसे पराजित हुए! १६०. *(श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

www.vitragvani.com

❀ हे आत्महितैषी प्राणी! पुण्यके फलमें हर्ष न कर और पापके फलमें द्वेष न कर। क्योंकि (पुण्य और पाप) वे पुद्गलकी पर्याय हैं, उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं, और फिर उत्पन्न होते हैं। अपने अंतरमें निश्चयसे–वास्तवमें–लाखों बातोंका सार इसी प्रकार ग्रहण करो कि पुण्य-पापरूप सर्व जन्म-मरणके द्वंदरूप (राग-द्वेष) विकारी मलिन भावोंको तोड़कर सदा अपने आत्माका ध्यान करना। १६१.

(श्री छहढाला)

❀ रावणके रामचन्द्र और लक्ष्मणका विनाश करनेके लिये बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की, कौरवोंने पाण्डवोंका नाश करनेके लिये कात्यायनी विद्या साधी, कंसने नारायणका (श्रीकृष्णका) विनाश करनेके लिये अनेक विद्याएँ सिद्धकीं, परन्तु उन विद्याओं द्वारा रामचन्द्र, पाण्डव और श्रीकृष्ण नारायणका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ। रामचन्द्रजी आदिने अपने विघ्न दूर करनेके लिये मिथ्या देवोंकी आराधना नहीं की तथापि निर्मल सम्यक्त्वसे उपार्जित पूर्वकृत पुण्यसे उनके सर्व विघ्न दूर हुए। १६२.

(श्री बृहद्द्रव्यसंग्रह)

❀ ज्ञानी कहते हैं कि फिर करेंगे, फिर करेंगे–ऐसा अभ्यास जिसने कर रखा है उसे मरणके समय भी फिर ही रहनेवाला है; क्योंकि जिसने फिर.....फिरका सिद्धान्त अपना रखा है उसको फिर-फिरमें अभी करूँ ऐसा नहीं आयगा। और ज्ञानीको तो ऐसा लगता है कि यह शरीर छूटनेके समय बहुत जोर लगेगा; तो उसमें जितना जोर है उतना जोर सामने आत्माका भी लगेगा। इसलिये ज्ञानीको ऐसा लगता है कि अपने भावको इसी क्षण तैयार कर लूँ, इसी पल तैयार कर लूँ। 'इसी पल करूँ'–ऐसा जिसने अभ्यास कर रखा है उसे मृत्युके समय 'यही पल' आ जायगा! १६३. *(दृष्टिके निधान)*

❀ जो पुराने कर्मोंको खपाता है और नवीन कर्मोंको आने नहीं

देता तथा प्रतिदिन जिनदेवको ध्याता है, वह जीव परमात्मा हो जाता है। १६४. *(श्री पाहुड़ दोहा)*

❀ संसार रूप रहँट यंत्र (घटी यंत्र)में एक घरीके (पाटलीके) समान एक विपत्ति दूर करे उससे पूर्व तो दूसरी अनेक विपत्तियाँ सामने आ उपस्थित होती हैं। १६५. *(श्री इष्टोपदेश)*

❀ हे नाथ! दुःखमें या सुखमें, शत्रुके प्रति या बंधुवर्गके प्रति, संयोगमें या वियोगमें, घरमें या वनमें, सम्पूर्ण ममत्वबुद्धि दूर होकर मेरा मन सदैव समभावी रहो। १६६. *(श्री सामायिक पाठ)*

❀ सुख पानेके भावसे प्रेरित होकर मूर्ख मनुष्य क्या क्या पाप नहि कर डालते हैं? जिस पापसे करोडों जन्मोंमें भी दुःखोंको पाते हैं। १६७.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ हे मूढ़ जीव! तू यहाँ अल्प दुःखको भी सहन नहीं कर सकता, तब विचार तो सही कि–चार गतियोंके भयंकर दुःखोंके कारणभूत कर्मोंको तू किसलिये करता है? १६८. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ अज्ञानी जीनेके लक्षसे जी रहे हैं इसलिये उन्हें मरण अच्छा नहीं लगता। मृत्यु आनेपर भी उन्हें जीनेका लक्ष बना रहता है। ज्ञानी तो मरनेके लक्षसे ही जीते हैं। इसलिये पहलेसे ही परीक्षा और प्रयोग तैयारी कर रखी है; फिर वे मृत्युका आनन्द पूर्वक स्वागत करते हैं, उनको मृत्युका अवसर महोत्सवके समान होता है; इसलिये आनन्द पूर्वक शरीरका त्याग करते हैं। जीनेके भावसे तो अनन्त बार जिया है, परन्तु मरणके भावसे कभी नहीं जिया। मरनेके भावसे जिये तो उसे पुनः जन्म धारण करना ही न पड़े। १६९. *(दृष्टिके निधान)*

❀ अपने निकट ही रहनेवाले किसी भी मित्र अथवा अन्य किसीसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, मुझे इस शरीरसे भी प्रेम नहीं रहा, इस समय मैं अकेला ही सुखी हूँ। यहाँ संसारपरिभ्रमणमें चिरकालसे मुझे जो

www.vitragvani.com

संयोगके निमित्तसे कष्ट हुआ है उससे मैं विरक्त हुआ हूँ, इसलिये अब मुझे एकाकीपना (अद्वैत) अत्यन्त रुचता है। १७०.

(पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ यह विषय सुख तो दो दिन रहनेवाले–क्षणिक हैं; फिर तो दुःखोंकी ही परिपाटी है। इसलिये हे जीव तू अपने आत्माको भूलकर अपने ही कन्धे पर कुल्हाड़ीका प्रहार मत कर। १७१.

(श्री पाहुड़ दोहा)

❀ सुखमें, दुःखमें, महारोगमें, भूख आदि उपद्रवोंमें–बाईस परीषहोंमें तथा चार प्रकारके उपसर्ग आ पड़े तब शुद्ध आत्माका चिन्तवन करूँ। १७२. *(तत्त्वज्ञानतरंगिणी)*

❀ अपने ऊपर कोई आपत्ति आ पड़नेसे मनुष्य जिस प्रकार दुःखी होता है उसी प्रकार दूसरों पर आ पड़ी आपत्तिको अपनी आपत्ति समझकर दुःखका अनुभव करना वह दयालुपना है। १७३.

(श्री क्षत्रचूड़ामणि)

❀ (दावानलकी ज्वालासे) जलते हुए मृगोंसे भरे हुए वनके बीच वृक्षपर बैठे हुए मनुष्यकी भाँति (संसारी) मूढ़ प्राणी दूसरोंकी (विपत्तिकी) भाँति अपनी विपत्तिको नहीं देखता। १७४. *(श्री इष्टोपदेश)*

❀ बाह्य दुःख बुद्धिमान पंडितको मनमें कष्ट नहीं पैदा करता है किंतु अन्य मूर्खको ही सताता है। पवनके वेगोंसे रुई उड जाती है किंतु सुमेरु पर्वतका शिखर कभी नहीं उड़ता है। १७५.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ अरे प्रभु! तेरा कभी मरण ही नहीं होता तो क्यों डरता है? अतीन्द्रिय आनन्दमें जा! प्रभु! तेरे शरीर ही नहीं है तो रोगसे क्यों डरता है? जन्म, जरा और रोगसे रहित भगवान आत्मा है वहाँ जा!–ऐसा

जिनवर, जिनवाणी तथा गुरु कहते हैं। तू जन्म, जरा, मरणरहित प्रभु है, वहाँ दृष्टि दे। तुझे जन्म, जरा, मरणरहित होना हो तो भीतर भगवान विराजमान है वहाँ जा! वहाँ दृष्टि लगाकर स्थिर हो!

(दृष्टिके निधान)

❀ जगतमें दो ही पदार्थ हैं, दैव और पुरुषार्थ। सो दैव ही प्रबल है। जो पुरुषार्थका गर्व करते हैं उन्हें धिक्कार है! यदि पुरुषार्थ ही प्रबल हो तो मैं वासुदेव नंगी तलवारके समान तेजस्वी, मेरे पुत्रको शत्रु कैसे ले जाय? (प्रद्युम्न हरणके समय श्रीकृष्णके उद्गार) १७७.

(श्री हरिवंश पुराण)

❀ हे आत्मन्! तुझे लोकका क्या प्रयोजन है? आश्रयका क्या प्रयोजन है? द्रव्यका क्या प्रयोजन है? शरीरका क्या प्रयोजन है? वचनोंका क्या प्रयोजन है? इन्द्रियोंका क्या प्रयोजन है? प्राणोंका क्या प्रयोजन है? तथा उन विकल्पोंका भी तुझे क्या प्रयोजन है? अर्थात् इन सबका तुझे कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि वे सब पुद्गलकी पर्यायें हैं और इसलिये तुझसे भिन्न हैं। तू प्रमादके वश होकर व्यर्थ ही इन विकल्पों द्वारा क्यों अतिशय बंधनका आश्रय करता है? १७८.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ जिन इन्द्रियविषयोंके भोगनेसे नरनाथ (चक्रवर्ती) और इन्द्र भी तृप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं उनसे भला साधारण मनुष्य कैसे तृप्त हो सकते हैं? नहीं हो सकते। ठीक है–जिस नदीके प्रवाहमें अतिशय बलवान हाथी बह जाता है उसमें क्षुद्र खरगोशोंकी व्यवस्था किससे हो सकती है? किसीसे भी नहीं हो सकती है। १७९. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ धर्म गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बांधव है, हितू है, और धर्म ही विना कारण अनाथोंका प्रीतिपूर्वक रक्षा करनेवाला है। इस प्राणीको धर्मके अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है। १८०. *(श्री ज्ञानार्णव)*

www.vitragvani.com

❀ प्रथम तो मैं स्वभावसे ही ज्ञायक हूँ, मात्र ज्ञायक होनेसे मुझे विश्वके (समस्त पदार्थोंके) साथ भी सहज ज्ञेयज्ञायकलक्षण सम्बन्ध ही है, परन्तु अन्य स्वस्वामिलक्षणादि सम्बन्ध नहीं हैं, इसलिये मुझे किसीके प्रति ममत्व नहीं है, सर्वत्र निर्ममत्व ही है। १८१.

(श्री प्रवचनसार-टीका)

❀ इन्द्रियों द्वारा जो कुछ देखनेमें आता है, जाननेमें आता है और अनुभव करनेमें आता है वह सब आत्मासे बाह्य, नाशवान तथा चेतना रहित है। १८२. *(श्री योगसार प्राभृत)*

❀ हे भव्य जीव! आत्माके शुद्ध स्वरूपकी भावना ज्ञान सहित विनय पूर्वक सदा करो, नहीं तो मृत्यु आनेपर बहुत पश्चात्ताप होगा कि मैं कुछ भी नहीं कर सका। तथा मरणका समय निश्चित् नहीं है इसलिये आत्मज्ञानकी भावना सदैव करने योग्य है। १८३. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ हे प्रभु! मैंने अनादिकालसे आजतक जन्म-मरणके जो दुःख सहे हैं उन्हें आप जानते हैं। उन दुःखोंका स्मरण करते हुए मेरे हृदयमें शस्त्र जैसे घाव लगते हैं। १८४. *(श्री एकीभावस्तोत्र)*

❀ जिनागममें जो जीवाधिक पदार्थोंका स्वरूप कहा है वह प्रमाण तथा नयसे अविरुद्ध है तथा जीवादिकके स्वरूपका कथन आत्मसुखका कारण होनेसे अमृततुल्य है। ऐसे जिनागमकी प्राप्ति मुझे पूर्वकालमें कभी नहीं हुई थी। यह मुझे अपूर्व लाभ हुआ है। यह जिनागम सुगतिका मार्ग होनेसे मैंने स्वीकार किया है। उसके आश्रयसे मेरा मरणभय मिट गया है। अब मैं मरणसे नहीं डरता। १८५. *(श्री मूलाचार)*

❀ हे भव्य जीव! यदि तू आत्माका हित करना चाहता है तो निम्न काम कर :-इस भयानक संसारके दुःखोंसे भय कर, जिनशासनमें प्रेम कर और पूर्वे किये हुए पापका शोक कर। १८६.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ हे जीव! तूने भीषण (भयंकर) नरकगति तथा तिर्यंचगतिमें और कुदेव कुमनुष्यगतिमें तीव्र दुःख पाये हैं, अतः अब तू जिन-भावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना भा, इससे तेरे संसारका भ्रमण मिटेगा। १८७.

(श्री भावपाहुड)

❀ जैसे नरकका घर अति जीर्ण जिसके सैंकडो छिद्र हैं, वैसे यह कायरूपी घर साक्षात् नरकका मंदिर है, नव द्वारोंसे अशुचि वस्तु झरती है और आत्माराम जन्म-मरणादि छिद्र आदि दोष रहित है। भगवान शुद्धात्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्ममलसे रहित हैं, यह शरीर मल-मूत्रादि नरकसे भरा हुआ है। ऐसा शरीरका और जीवका भेद जानकर देहसे ममता छोड़के वीतराग निर्विकल्प समाधिमें ठहरकी निरंतर भावना करनी चाहिए। १८८. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ यह शरीर निश्चयसे नाश होनेवाला है, सर्व संपत्तिऐं वियोगके सन्मुख हैं, स्त्रीयें सदा ही सुखकारी व हितकारी व सभ्यतासे व्यवहार करनेवाली नहीं हैं, अपने कुटुंबी या पुत्र अपने मतलबसे विनय करनेवाले हैं, मरणको देनेवाले व शरणरहित बहुत गहरे दुःखोंसे भी जिसका तरना कठिन है ऐसे इस सार रहित संसारमें सिवाय मोक्षके दूसरा कोई पद सुखका देनेवाला नहीं है। १८९. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ कर्मोंकी गति सर्पके समान कुटिल है। कभी राजा बना देते हैं, कभी रंक। स्त्रियोंका मन भी चंचल है। संसारका ऐश्वर्य भी स्थायी नहीं है, पानीकी लहरोंके समान चपल है। मनुष्योंका मन भी इधर-उधर दौड़ा करता है। संकल्प मदसे मत्त स्त्रियोंकी आंखोंकी तरह बहनेवाला है, ये सब अस्थिर है, केवल एक मृत्यु ही निश्चित है—ऐसा मानकर बुद्धिमान पुरुष तात्त्विक धर्ममें मन लगावे। १९०.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ अहो! जगतमें मूर्ख जीवोंको क्या कठिन है? वे जो अनर्थ करें

www.vitragvani.com

उसका आश्चर्य नहीं है, परन्तु नहीं करें वही वास्तवमें आश्चर्य है। शरीरको प्रतिदिन पोषते हैं, साथ ही साथ विषयोंका भी सेवन करते हैं। उन मूर्ख जीवोंको कुछ भी विवेक नहीं है कि विषपान करके अमरत्वकी इच्छा रखते हैं।–सुखकी वांछा करते हैं। १९१.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ शरीर जड़ है, मानों एक मुर्देका ही स्थान है; वह रज और वीर्यसे भरा है, मल–मूत्ररूपी खेतकी क्यारी है, रोगोंकी गठरी है, आत्मस्वरूपको ढँकनेवाला है, कष्टोंका समूह है तथा आत्मध्यानसे भिन्न है। हे जीव! यह शरीर सुखका घात करता है तब भी तुझे प्रिय लगता है; अन्तमें तो यह तुझे छोड़ेगा ही, तो फिर तू ही इसका स्नेह क्यों नहीं छोड़ देता? १९२. (श्री नाटकसमयसार)

❀ देखो! यह अनन्तज्ञानका स्वामी भूलकर दुःखी हो रहा है। हँसी होने पर मनुष्य लज्जित होता है, फिरसे हँसीका काम नहीं करता (परन्तु) इस जीवकी अनादिकालसे जगतमें हँसी हो रही है, तथापि यह लज्जित नहीं होता। पुनः पुनः उसी मिथ्यारीतिको पकड़ता है। जिसकी बात करनेसे अनुपम आनन्द हो ऐसा अपना पद है उसे तो ग्रहण नहीं करता और परवस्तु की ओर देखते ही चौरासीका बंदीगृह है उसका अत्यन्त रुचिपूर्वक सेवन करता है। १९३. (श्री अनुभवप्रकाश)

❀ हे प्राणी! इस अशुचि शरीरसे ममत्व करके तू अत्यन्त दुःखी हो रहा है, हाय! ठगा जा रहा है, नष्ट हो रहा है। पराधीनताजन्य अपार भयंकर दुःखका अनुभव कर रहा है। परन्तु अब तो उसे अनन्त दुःखकी खान तथा महा अपवित्र समझ तभी तेरा ज्ञान सत्य ज्ञान कहा जायगा। तथा उसके प्रति अनादि-ममत्व छोड़ना वही वास्तविक महान साहस है। १९४. (श्री आत्मानुशासन)

❀ भाग्यवश राजा भी क्षणभरमें निश्चयसे रंक समान हो जाता है

तथा समस्त रोगोंसे रहित युवा पुरुष भी तुरन्त मरणको प्राप्त होता है। इस प्रकार अन्य पदार्थोंके विषयमें तो क्या कहें? परन्तु जो लक्ष्मी और जीवन दोनों संसारमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं उनकी भी यदि ऐसी स्थिति है तो विद्वान् मनुष्यको अन्य किसके विषयमें अभियान करना चाहिये? अर्थात् अभिमान करने योग्य कोई भी पदार्थ यहाँ स्थायी नहीं है। १९५. (श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ इस संसारमें विषयांध जीवोंने कौतूहलपूर्वक भोग–भोगकर छोड़े हुए पदार्थोंकी मोहमूढ़ जीव पुनः पुनः इच्छा करता है। तू उन परवस्तुरूप भोगादिमें इतना तीव्र रागी हुआ है कि उनको तू बारम्बार आश्चर्ययुक्त और महत्त्वपूर्ण दृष्टिसे देख रहा है कि मानो इस क्षणसे पूर्व उन भोगादि पदार्थोंको तूने पहले कभी देखा नहीं है और न उनका अनुभव किया है। परन्तु भाई! वे भोगादि पदार्थ तूने अनन्त बार भोगे हैं। अरे! तू अकेलेने ही नहीं परन्तु अनन्त जीवोंने तेरे ही वर्तमान अभिलषित भोगादि पदार्थ भोगे हैं और छोड़े हैं। परन्तु भाई! तुझे उसकी कोई सुध नहीं रही है, इसीलिये तेरे तथा अनन्त जीवों द्वारा बारम्बार छोड़ी हुई उच्छिष्ट (जूठन)को तू बारम्बार पुनः पुनः आदरणीय भावसे तथा आश्चर्ययुक्तरूपसे ग्रहण करता रहता है। १९६.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ हे आत्मन्! कृमियोंके सैकड़ों जालोंसे भरा हुआ और नित्य जर्जरित होता यह देहरूपी पिंजरा, इसके नष्ट होनेसे तुम भय मत करा; क्योंकि तुम तो ज्ञानशरीरी हो। १९७. (मृत्यु महोत्सव)

❀ संसारमें भोग-उपभोगकी प्राप्तिसे जितना सुख होता है उसकी और उन भोग-उपभोगके नाशसे जितना दुःख होता है उसकी तुलना करें तो भोग-उपभोगकी प्राप्तिसे होनेवाले सुखकी अपेक्षा भोग-उपभोगके नाशसे होनेवाला दुःख अत्यधिक है। १९८. (श्री भगवती आराधना)

www.vitragvani.com

❀ जो विषयजन्य दोष देवोंको दुःख देते हैं उनके रहने पर भला साधारण मनुष्य कैसे सुख प्राप्त कर सकते हैं? नहीं प्राप्त कर सकते। ठीक है–जिस सिंहके द्वारा झरते हुए मदसे मलिन गंडस्थलवाला अर्थात् मदोन्मत्त हाथी भी कष्टको प्राप्त होता है वह पैरोंके नीचे पड़े हुए मृगको छोडेगा क्या? अर्थात् नहीं छोड़ेगा। १९९.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ तू निश्चयसे मान कि यह शरीर एक दुष्ट शत्रु जैसा है। जैसे– शत्रुका हाथमेंसे छूटनेके बाद फिर वशमें होना अत्यन्त कठिन है, वैसे ही यह मनुष्य शरीर भी एकबार अबोध परिणामसे छूटनेके बाद फिर हाथमें आना कठिन है। आत्मबोध शरीरको वशमें रखनेका एक अमोघ मंत्र है। तथा यह शरीर, उस आत्मबोधसे वंचितरूपमें छूटनेके बाद इतना ज्ञानबाल तेरे पास नहीं रहेगा कि जिससे तू फिर उसे अपने वशमें कर सके! इसीलिये इस अमूल्य अवसरमें उसकी तेरे ऊपर जो सत्ता है उसे निर्मूल कर! २००. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ हे सांसारिक दुःखरूप क्षुधासे पीड़ित मनरूपी पथिक! तू मनुष्य-पर्यायरूपी वृक्षकी विषयसुखरूपी छायाकी प्राप्तिसे ही किसलिये संतुष्ट होता है? उससे तू अमृतरूप फलका ग्रहण कर! २०१.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशतिका)

❀ हे प्राणी! तुम देखो तो सही, इस मोहका माहात्म्य! कि पापवश बड़ा राजा भी मरकर विष्टाके कीड़ेमें जाकर उत्पन्न होता है और वहीं वह रति मानता है–क्रीड़ा करता है। २०२.

(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

❀ इस जगतमें समुद्र तो जलके प्रवाहोंसे (नदियोंके मिलनेसे) तृप्त नहीं होता और अग्नि इंधनोंसे तृप्त नहीं होता, सो कदाचित् दैवयोगसे

किसी प्रकार ये दोनों तृप्त हो भी जाय परंतु यह जीव चिरकाल पर्यंत नाना प्रकारके काम-भोगादिके भोगने पर भी कभी तृप्त नहीं होता। २०३. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ शरीरका स्वभाव अनिष्ट है, यह सर्व पदार्थोंको अशुद्ध करनेका स्थान है ऐसा जानो। शरीरका मोही ज्ञानस्वभावी आत्माका श्रद्धान नहीं कर पाता है। इस शरीरका स्वागत करना अनंत दुःखोंका बीज है। २०४. *(श्री उपदेश शुद्धसार)*

❀ स्वर्गलोकमें इच्छानुसार भोगोंको निरंतर भोगकर भी जो कोई निश्चयसे तृप्त नहीं हुआ वह वर्तमान तुच्छ भोगोंसे किस तरह तृप्ति प्राप्त कर सकेगा? २०५. *(श्री सारसमुच्चय-टीका)*

❀ विषय-भोग समयानुसार स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं और ऐसा होने पर उनमें कोई गुण नहीं उत्पन्न होता है–उनसे कुछ भी लाभ नहीं होता है। इसलिये हे जीव! तू दुःख और भयको उत्पन्न करनेवाले इन विषयभोगोंको धर्मबुद्धिसे स्वयं छोड़ दे। कारण यह कि यदि ये स्वयं ही स्वतंत्रतासे नष्ट होते हैं तो मनमें अतिशय तीव्र संतापको करते हैं और यदि इनको तू स्वयं छोड़ देता है तो फिर वे उस अनुपम आत्मिक सुखको उत्पन्न करते हैं जो सदा स्थिर रहनेवाला एवम् पूज्य है। २०६.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ हे भव्य! विषतुल्य और कड़वे ऐसे विषयोंमें तुझे क्या स्वाद आ रहा है? कि जिससे उनकी ही तृष्णारूप अति दुःखको अनुभवता हुआ उन विषयोंको ढूँढ़नेमें अपना अति महान निजपदरूप अमृत मलिन करता है और मनकी सेविकाएँ जो इन्द्रियाँ उनका आज्ञांकित सेवक होकर तू उन्हीं विषयोंमें प्रवर्तता है। पित्तज्वरवाले जीवको जिस प्रकार वस्तुका स्वाद विपरीत भासित होता है उसी प्रकार विषयासक्तपनेके कारण रागरससे तू विपरीत स्वादु बना है। २०७. *(श्री आत्मानुशासन)*

www.vitragvani.com

❀ हे मुने! तूने माताके गर्भमें रहकर जन्म लेकर मरण किया, वह तेरे मरणसे अन्य-अन्य जन्ममें अन्य-अन्य माताके रुदनसे नयनोंका नीर एकत्र करें तब समुद्रके जलसे भी अतिशयकर अधिकगुणा हो जावे अर्थात् अनंतगुणा हो जावे। २०८. *(श्री भावपाहुड)*

❀ इस संसारमें जो भी शारीरिक और मानसिक दुःख उत्पन्न होते हैं वे सब शरीर पर ममत्व करनेसे जीवको अनन्त बार प्राप्त हुए हैं। २०९. *(श्री मूलाचार)*

❀ ये इन्द्रियोंके भोग असार अर्थात् सार रहित तुच्छ जीर्ण तृणके समान हैं, भयको पैदा करनेवाले हैं, आकुलतामय कष्टको करनेवाले हैं व सदा ही नाश होनेवाले हैं, दुर्गतिमें जन्म कराकर क्लेशको पैदा करनेवाले हैं तथा विद्वानोंके द्वारा निंदनीक हैं। इस तरह विचार करते हुए भी खेदकी बात है कि मेरी बुद्धि भोगोंसे नहीं हटती है तब मैं बुद्धि रहित किसको पूछुं, किसका सहारा लूँ, कौनसी तदबीर करूँ? २१०. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ जगतमें अज्ञानी मनुष्य भी अपनेको अहितकारी वस्तुओंमें प्रेम नहीं रखते। जो विषय-भोगादिमें फँस रहे हैं ऐसे विषयादिमें फँसे हुए मनुष्य भी जिन वस्तुओंको अहितकर मानते हैं उन्हें तुरन्त ही छोड़ देते हैं। देखो, स्त्री उनकी अत्यन्त प्रिय वस्तु है, परन्तु यदि एकबार भी जाननेमें आये कि वह स्त्री मुझे छोड़कर किसी अन्यको चाहती है, अन्यके साथ क्रीड़ा करती है तो उसी समय उसे छोड़ देता है। परन्तु तू विषयादिकी भयंकरताका साक्षात् अनुभव कर चुका है; एक बार नहीं किन्तु बारम्बार अनेक भवोंमें वही कड़वा अनुभव करता आया है, तब भी तू क्यों विरक्तचित्त नहीं होता? भोजनमें विष है ऐसा ज्ञात होने पर कौन विवेकी मनुष्य उसे ग्रहण करेगा? विषय तो उस विषसे भी अधिक भयंकर दुःखप्रद हैं, तथापि तू उन्हीं विषयोंके फंदेमें पड़ना चाहता है! २११. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ कोई प्राणी विष खाले तो उसकी वेदनासे वह एक ही जन्ममें कष्टपूर्वक मरता है, परन्तु जिन प्राणियोंने इन्द्रियभोगरूपी विषका पान किया है वे प्राणी इस संसाररूपी वनमें बारम्बार भ्रमण करते रहते हैं– बारम्बार मरते हैं। २१२. *(श्री शीलपाहुड़)*

❀ इस संसारमें परम सुख क्या है? तो वह एक इच्छारहितपना है तथा परम दुःख क्या है? तो वह इच्छाओंका दास हो जाना है। ऐसा मनमें समझकर जो पुरुष सर्वसे ममता त्यागकर जिनधर्मको सेवन करते हैं वे ही पुण्यात्मा पवित्र हैं। शरीर व शरीरके संबंधियोंके संबंधमें चिंता करना इच्छाओंको पैदा करनेका बीज है। इनसे मोह त्यागना ही इच्छाओंको मिटानेका बीज है। २१३. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ हे जीव! तूने इस लोकके उदरमें वर्तते जो पुद्गल स्कंध, उन सबको ग्रसे अर्थात् भक्षण किये और उन्हींको पुनरुक्त अर्थात् बार-बार भोगता हुआ भी तृप्तिको प्राप्त न हुआ। २१४.

(श्री भावपाहुड)

❀ इस संसाररूपी समुद्रमें भ्रमण करनेसे मनुष्योंके जितने संबंध होते हैं, वे सब ही आपदाओंके घर हैं। क्योंकि अंतमें प्रायः सब ही संबंध निरस हो जाता है, यह प्राणी उनसे सुख मानता है सो भ्रममात्र है। २१५. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ हे प्राणी! तू व्यर्थ ही प्रमाददशाको प्राप्त न हो! अनन्य सुखके हेतुभूत समभावको प्राप्त कर! तुझे इन धनादिसे क्या प्रयोजन है? यह धनादि तो आशारूपी अग्निको प्रज्वलित करनेमें ईंधनका काम करते हैं। निरन्तर पापकर्म उत्पन्न करानेवाले इन सम्बन्धीजनोंसे भी तुझे किसलिये ममत्व बना रहता है? महा मोहरूपी सर्पकी बाँबी जैसा तेरा यह शरीर, उससे भी तुझे क्या प्रयोजन है? व्यर्थ ही प्रमादी होकर रागादि महा दुःखरूप भावोंको धारण न करके सुखके हेतु मात्र एक समभावको ही प्राप्त हो। २१६. *(श्री आत्मानुशासन)*

www.vitragvani.com

❀ रे मन! तू कभी तो पातालमें जाकर नागकुमारी देवियोंके सुखको भोगनेके लिये चिंता करता रहता है, कभी दूसरेके पास प्राप्त न हो सके ऐसी विभूतिवाले चक्रवर्तीके राज्यको प्राप्त करनेके लिये इस पृथ्वी पर आनेकी इच्छा किया करता है तथा कभी कामसे उन्मत्त ऐसी स्वर्गवासी देवोंकी देवांगनाओंको पानेके लिये स्वर्गमें जानेकी उत्कंठा किया करता है, इस भ्रममें पड़कर असलमें अमृतके समान सुखदाई जिनवचनको नहीं प्राप्त करता है। २१७. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ ऐसे हमारे कर्म नामक शत्रुने मेरे आत्माको देहरूपी पिंजरेमें बन्द किया सो गर्भमें आया, उस क्षणसे सदाकाल क्षुधा, तृषा, रोग, वियोग इत्यादि अनेक दुःखोंसे तप्तायमान हुआ पड़ा है, अब ऐसे अनेक दुःखोंसे व्याप्त इस देहरूपी पिंजरेसे मुझे मृत्युनामक राजाके सिवा और कौन छुड़ा सकता है? २१८. *(मृत्यु महोत्सव)*

❀ इस ही जन्ममें गर्भके भीतर रहते हुए भी जो दुःख तूने उठाये हैं अब तू क्यों उनको भूल गया है जिससे तू अपने आत्माको नहीं पहचानता है? २१९. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ जो मूढ़ पुरुष पाँचों इन्द्रियोंके विषय-सेवनमें सुखको ढूँढ़ता है वह शीतलताके लिये अग्निमें प्रवेश करने समान है तथा दीर्घजीवनके लिये विषपान करने जैसा है। उसे इस विपरीत बुद्धिके कारण सुखके बदले दुःख ही होगा। २२०. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ गर्भसे लेकर प्राणान्त तक यह शरीर व्यर्थ ही क्लेश, अपवित्रता, भय, तिरस्कार एवं पापसे भरपूर होता है—ऐसा विचारकर बुद्धिमान पुरुषोंको ऐसे विटम्बनापूर्ण शरीरका स्नेह सर्वथा त्यागने योग्य है। यदि नश्वर और मात्र दुःखपूर्ण शरीरका ममत्व छोड़नेसे आत्मा वास्तवमें मुक्तदशाको प्राप्त होता हो तो जगतमें ऐसा कौन मूर्ख है कि जो उसके त्यागमें प्रमाद करेगा? शरीर वह वास्तवमें दुष्ट मनुष्यकी संगति जैसा है। २२१. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ इस शरीरका सम्बन्ध ही संसार है, उससे विषयोंमें प्रवृत्ति होती है जिससे प्राणीको दुःख होता है। ठीक ही है—लोहेका आश्रय लेनेवाली अग्निको घनके कठोर आघात सहन करना पड़ता है। इसलिये मोक्षार्थी भव्य जीवोंको यह शरीर ऐसी महान युक्तिसे छोड़ना चाहिये कि जिससे संसारके कारणभूत उस शरीरका सम्बन्ध आत्माके साथ फिरसे न हो सके। २२२. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ रूपमें लीन हुए पतंग—जीव दीपकमें जलकर मर जाते हैं, शब्द-विषयमें लीन हिरण व्याधके बाणोंसे मारे जाते हैं, हाथी स्पर्श-विषयके कारण गड्ढेमें पड़कर बांधे जाते हैं, सुगंधकी लोलुपतासे भौंर कांटेमें या कमलमें दबकर प्राण छोड़ देते हैं और रसके लोभी मच्छ धीवरके जालमें पड़कर मारे जाते हैं। एक एक विषय-कषायकर आसक्त हुए जीव नाशको प्राप्त होते हैं, तो पंचेन्द्रियका (पंच-इन्द्रियविषयोंमें आसक्त जीवका) कहना ही क्या है? ऐसा जानकर विवेकी जीव विषयोंमें क्या प्रीति करते हैं? कभी नहीं करते। २२३. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ देखो तो सही यह शरीर, स्नान एवं सुगन्धित वस्तुओं द्वारा सुधारते हैं तथा अनेक प्रकारके भोजनादि भक्ष्यों द्वारा पालन करते हैं फिर भी जल भरे हुए कच्चे घड़ेकी भाँति क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है। २२४. *(श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

❀ हे निर्बुद्धि जीव! यह शरीररूपी घर वास्तवमें तुझे बन्दीगृह (जेल)के समान है। इसमें तू वृथा प्रीति न कर! यह शरीररूपी बन्दीगृह हड्डियोंरूपी स्थूल पत्थरोंसे चिना गया है, नसोंरूपी जालसे घिरा हुआ है, चारों और चर्मसे आच्छादित है, रुधिर एवं सजल मांससे लीपा गया है, दुष्ट कर्मरूपी शत्रुने उसकी रचना की है और आयुकर्मरूपी भारी बेड़ीसे वह बँधा हुआ है। २२५. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ अपना सहज आस्वादी होकर परका प्रेम छोड़कर चेतना-प्रकाशके

www.vitragvani.com

विलासरूप अतीन्द्रिय भोगका भोग कर! क्या झूटमूट सूने जड़में अपनत्व मानता है। तथा परसे कहता है कि 'यह मुझे दुःख देता है', परन्तु उसमें दुःख देनेकी शक्ति नहीं है। दूसरेके सिरपर झूठा आरोप लगाता है परन्तु अपनी हरामजदगीको नहीं देखता! अचेतनको नचाता फिर रहा है लज्जा भी नहीं आती। मुर्देसे सगाई की, अब हम उसके साथ विवाह करके सम्बन्ध बाँधेंगे, तो ऐसी बात लोकमें भी निंद्य है। तुम तो अनन्त ज्ञानके धारक चिदानन्द हो। जड़के साथ अपनत्व माननेकी अनादिकालीन मिथ्या विटम्बनाको मिटाओ! २२६. *(श्री अनुभवप्रकाश)*

❀ शरीरमें जो आत्मबुद्धि है सो बंधु, धन, इत्यादिककी कल्पना उत्पन्न कराती है, तथा इस कल्पनासे ही जगत अपनी संपदा मानता हुआ ठगा गया है। शरीरमें ऐसा जो भाव है कि—'यह मैं आत्मा ही हूं' ऐसा भाव संसारकी स्थितिका बीज है, इस कारण बाह्यमें नष्ट हो गया है इन्द्रियोंका विक्षेप जिसके ऐसा पुरुष उस भावरूप संसारके बीजको छोड़कर अंतरंगमें प्रवेश करो, ऐसा उपदेश है। २२७.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ जो इस भवमें पुत्र है वह अन्य भवमें पिता होता है। जो इस भवमें माता है वह अन्य भवमें पुत्री होती है। इस प्रकार पुत्र-माता-पिता-बहिन-कन्या-स्त्री इनमें परस्परसे परस्परकी उत्पत्ति देखी जाती है। ज्यादा क्या कहें, यह जीव मरकर स्वयं अपना पुत्र उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार इन संसारी जीवोंकी सदा दुःखमय इस संसार-परंपराको धिक्कार है। २२८. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ संसारमें मनुष्य भोजनसे भूखको, शीतल जलसे प्यासको, मंत्रसे भूत-पिशाचादिको, साम, दाम, दण्ड और भेदसे शत्रुको तथा औषधिसे रोगोंके समूहको शांत करता रहता है। परन्तु मृत्युको देव भी शांत नहीं कर सकते। इस प्रकार विचार करके विद्वान मनुष्य मित्र अथवा पुत्रके

मरने पर भी शोक नहीं करते, परन्तु एकमात्र धर्मका आचरण करते हैं और उसीसे वे मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। २२९.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ दूध और पानीकी भाँति अभेदवत् मिले हुए ऐसे जीव और शरीरमें ही जब प्रत्यक्ष भेद है तो फिर स्पष्ट पररूप ज्ञात होनेवाले स्त्री, पुत्र, धनादि, चेतन-अचेतन बाह्य पदार्थोंकी भिन्नताका तो कहना ही क्या? वे तो प्रगट भिन्न हैं ऐसा सम्यक् प्रकारसे विचारकर इस जगतके सर्व चेतन-अचेतन परपदार्थोंके प्रति स्नेहको विवेकी पुरुष छोड़ते हैं। २३०. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ देव, नर, नारकी और तिर्यंचके शरीर जड़ हैं; उनके चेतनका अंश भी नहीं है। भ्रमसे उसका श्रृंगार करते हैं, खान-पान-इत्र-तेल लगानेरूप अनेक यत्न करते हैं, झूट ही आनन्द मान-मानकर हर्षित होते हैं। मृतकके साथ जीवितकी सगाई करके कार्यको कैसे सुधारें? जैसे श्वान हड्डीको चबाये और उसके अपने गाल, गला और मसूड़ोंसे खून निकले उसे मानता है कि अच्छा स्वाद है, वैसे ही मूढ़ जीव दुःखमें सुखकी कल्पना करते हैं, परफन्दमें सुखकन्द–सुख मानते हैं। २३१.

(श्री अनुभवप्रकाश)

❀ जो तृष्णारूपी रोग भोगोंके भोगनेरूप औषधिसेवनसे मिट जावे तब तो भोगोंको चाहना, मिलाना व भोगना उचित है। परंतु जब भोगाद्यड-३ह्रेंद्यघ्-०ह्नके कारण तृष्णाका रोग और अधिक बढ़ जावे तब भोगोंकी दवाई मिथ्या है, यह समझकर इस दवाका राग छोड़ देना चाहिये, व सच्ची दवा ढूंढ़नी चाहिये, जिससे तृष्णाका रोग मिट जावे। वह दवा एक शांतरसमय निज आत्माका ध्यान है जिससे स्वाधीन आनंद जितना मिलता जाता है उतना उतना ही विषयभोगोंका राग घटता जाता है। स्वाधीन सुखके विलाससे ही विषयभोगोंकी वांछा मिट जाती है। अतएव

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इन्द्रिय सुखकी आशा छोड़कर अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्तिका उद्यम करना चाहिये। २३२. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ जिनकी विषयभोगोंकी इच्छा नष्ट हो चुकी है उनको जो यहाँ सुख प्राप्त होता है वह न तो इन्द्रोंको प्राप्त हो सकता है और न चक्रवर्तीयोंको भी। इसलिये मनमें अतिशय प्रीति धारण करके ये जो विषयरूप शत्रु परिणाममें अहितकारक हैं उनको छोड़ो और धर्मका आराधन करो। २३३. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ इस शरीरमें जगह-जगह रक्तके कुण्ड और बालोंके झुण्ड हैं, वह हड्डियोंसे भरा है मानों चुड़ेलका निवासस्थान ही है। जरा-सा धक्का लगने पर इस प्रकार फट जाता है मानों कागजकी पुड़िया अथवा कपड़ेकी पुरानी चादर हो। वह अपना अस्थिर स्वभाव प्रगट करता है परन्तु मूर्खजन उससे स्नेह करते हैं। वह सुखका घात करनेवाला और बुराईयोंकी खान है। उसीके प्रेम और संगसे अपनी बुद्धि कोल्हूके बेल जैसी संसारमें परिभ्रमण करनेकी हो गई है। २३४. *(श्री नाटक समयसार)*

❀ हे मूढ प्राणी! इस संसारमें तेरे सन्मुख जो कुछ सुख वा दुःख हैं। उन दोनोंको ज्ञानरूपी तुलामें (तराजूमें) चढाकर तोलेगा, तो सुखसे दुःख ही अनंतगुणा दिख पड़ेगा, क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है। २३५. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ उत्तम विवेकवान पुरुष तो इस शरीरको रुधिरादि महानिंद्य एवं अत्यन्त ग्लानियुक्त पदार्थोंसे भरा हुआ एक थैला समझते हैं, उसमें रति नहीं करते। मलिन एवं प्रति क्षण दुःखकी ही जन्मदात्री ऐसी कायाका मोह विवेकवान उत्तम पुरुष नहीं करते। २३६.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ हे मन! तेरे द्वारा जो अनेक प्रकारके भोग, भोग-भोग करके छोडे जा चुके हैं, अहो! बड़े खेदकी बात है कि तू वार वार उनही

की इच्छा करता है। वे भोग तेरी इच्छामें अग्नि डालनेके समान है अर्थात् तृष्णाको बढ़ानेवाले हैं। तृष्णाकी बुद्धिको रखनेवाला ऐसा तू जो है, सो तेरी तृप्ति उन भोगोंसे कभी भी नहीं हो सकती है। जैसे कडी धूपसे तप्तायमान स्थानमें या आगमें तपाए हुए स्थानमें किस तरह वेल उग सकती है? २३७. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ यह जीव अति व्याकुल होकर समस्त विषयोंको युगपत्–एकसाथ ग्रहण करनेके लिये लालायित रहता है, तथा एक विषयको छोड़कर अन्य विषयका ग्रहण करनेकी लालसा करता है, परन्तु परिणाममें क्या सिद्ध होता है? जैसे मनकी भूखवालेको कण मिला, तो क्या उससे उसकी भूख मिटेगी? वैसे ही सर्व ग्रहणकी जिसको इच्छा है उसे किसी एक विषयका ग्रहण होने पर इच्छा कैसे मिटेगी? और इच्छा मिटे बिना सुख भी नहीं होगा। इसलिये वे सब उपाय झूठे हैं। २३८.

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

❀ हे आत्मन्! तुम मोहनिद्रा छोड़कर सावधान होओ और देखो, तुम धन-सम्पत्तिरूप मायामें क्यों भूल रहे हो? तुम कहाँसे आये हो और कहाँ चले जाओगे और धन-दौलत जहाँकी तहाँ पड़ी रहेगी। लक्ष्मी तुम्हारी जाति-पाँतिकी नहीं है, वंश-परंपराकी नहीं है, और तो क्या? तुम्हारे एक प्रदेशका भी प्रतिरूप नहीं है। यदि तुमने इसे नौकरानी बनाकर नहीं रखा तो यह तुम्हें लात मारेगी; इसलिये महान होकर तुम्हें ऐसा अन्याय करना योग्य नहीं है। २३९.

(श्री नाटक समयसार)

❀ जैसे रेशमका कीड़ा अपने ही मुखसे तारोंको निकालकर अपनेको ही उसमें आच्छादित कर लेता है, उसी प्रकार हिताहितमें विचारशून्य होकर यह गृहस्थजन भी अनेक प्रकारके आरंभोंसे पाप उपार्जन करके अपनेको शीघ्र ही पापजालमें फँसा लेते हैं। २४०. *(श्री ज्ञानार्णव)*

www.vitragvani.com

❀ संसारमें ऐसा कोई तीर्थ नहीं है, ऐसा कोई जल नहीं है तथा अन्य भी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसके द्वारा पूर्णतया अपवित्र यह मनुष्यका शरीर प्रत्यक्षमें शुद्ध हो सके। आधि (मानसिक कष्ट), व्याधि (शारीरिक कष्ट), वृद्धावस्था एवं मरणादिसे व्याप्त यह शरीर निरन्तर इतना सन्तापकारी है कि सज्जनोंको उसका नाम लेना भी असह्य लगता है। २४१. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ मोहसे अंध जीवोंके हृदयमें बाह्य स्त्री, पुत्र, शरीरादि पदार्थ अपनेरूप भासित होते हैं, मोहरहित पुरुषोंके हृदयमें कर्ममलसे रहित अविनाशी आत्मा ही सदा अपनेरूप भासता है। हे जीव! यदि तू इन दो भेदको समझ गया है, तो तू इन स्त्री-पुत्रादि कि जिनको तूने अपना मान लिया है उनमें एकत्वबुद्धिरूप दुष्ट मोहको क्षणमात्रमें नष्ट क्यों नहीं करता? २४२. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ हे संसारी जीवो? जिसे तुम कहते हो कि यह हमारा धन है उसे तो सज्जन–साधु पुरुष इस प्रकार छोड़ देते हैं जैसे नाकका मैल निकालनेके लिये नाकको सिनक देते हैं और फिर उसे देखते भी नहीं। जिस धनको तुम पुण्यके संयोगसे प्राप्त हुआ मानते हो वह मात्र डेढ़ दिनके बड़प्पन जैसा है, फिर वही नरकमें ले जानेवाला अर्थात् पापरूप है। तुम्हें उसमें आँखोंका सुख दिखाई देता है इसलिये तुम कुटुम्बीजनोंसे ऐसे घिर गयो हो जैसे मिठाई पर मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। आश्चर्यकी बात है कि ऐसा होने पर भी संसारी जीव संसारसे विरक्त नहीं होते। वास्तवमें देखा जाय तो संसारमें मात्र असाता ही है, क्षणमात्र भी साता नहीं है। २४३. *(श्री नाटक समयसार)*

❀ जिस प्रकार शिकारीके उपद्रव्यसे भयभीत हुआ खरगोश अजगरके खुले मुँहको बिल समझकर उसमें प्रवेश करता है वैसे ही अज्ञानी जीव क्षुधा, तृषा, काम-क्रोधादिक तथा इन्द्रिय-विषयोंकी तृष्णाके आतापसे संतप्त होकर विषयादिरूप अजगरके मुखमें प्रवेश करते हैं; उसमें प्रवेश करके

अपने ज्ञान, दर्शन, सुख, सत्तादिक भवप्राणका नाश करके निगोदमें अचेतनतुल्य होकर अनन्तबार जन्म-मरण करता हुआ अनन्तकाल व्यतीत करता है कि जहाँ आत्मा अभावतुल्य ही है। २४४.

(श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

❀ नवनिधियोंसे भी उस स्वमानरूप धनको महान धन जानकर तू अब उसके रक्षणार्थ परम संतोषवृत्तिको धारण कर! धनादिक विनाशी एवं तुच्छ वस्तुके अर्थ याचना करके आत्मगौरवरूप परम धनको लुटने देना वह तेरे लिये योग्य नहीं है। संसारपरिणामी जीव तृष्णावश होकर स्वमानको भी एक ओर रखकर दीनवत् याचक बन जाते हैं। और वह आशा तो नवनिधि प्राप्त होने पर भी शमन करना मात्र असंभव है, उलटी वह बढ़ती जाती है। तो फिर उस अल्प परिणामसे व्याकुलताजन्य विनाशिक इष्ट धनादिकके पीछे पागल होकर उस हेतु दीनपनेका सेवन करना वह क्या तुझे उचित है? ऐसा चिन्तवन करके जैसे हो सके वैसे उस आशारूप ग्राहका निग्रह कर। २४५. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ धन, परिजन (दास–दासी), स्त्री, भाई और मित्र आदिके मध्यमेंसे जो इस प्राणीके साथ जाता है ऐसा यहाँ एक भी कोई नहीं है फिर भी प्राणी विवेकसे रहित होकर उन सबके विषयमें तो अनुराग करते हैं, किन्तु उस धर्मको नहीं करते हैं जो कि जानेवालेके साथ जाता है। २४६. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ कामिनियोंकी जो शरीर विभूति उस विभूतिको, हे कामी पुरुष! यदि तू मनमें स्मरता है, तो मेरे वचनसे तुझे क्या लाभ होगा? अहो! आश्चर्य होता है कि सहज परमतत्त्वको–निजस्वरूपको–छोड़कर तू किस कारण विपुल मोहको प्राप्त करता है? २४७. *(श्री नियमसार-टीका)*

❀ मोहके उदयरूप विषसे मिश्रित स्वर्गका सुख भी यदि नश्वर हो तो फिर अन्य तुच्छ सुखोंके सम्बन्धमें क्या कहना? अर्थात् वे तो अत्यन्त

www.vitragvani.com

विनश्वर और हेय हैं ही; इसलिये मुझे ऐसे संसार-सुखसे बस होओ–मैं ऐसा संसार-सुख नहीं चाहता। २४८. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ जिसके दोनों ओर अग्नि सुलग रही है ऐसी एरण्डकी लकड़ीके बीच छिपा हुआ कीड़ा जिस प्रकार अतिशय खेद खिन्न होता है वैसे ही इस शरीररूपी एरण्डकी लकड़ीमें फँसा हुआ जीव जन्म-मरणादि दुःखोंसे निरन्तर खेद खिन्न होता है। एरण्डकी लकड़ीमें फँसा हुआ कीड़ा भागकर कहाँ जाय? क्योंकि दोनों और अग्नि सुलग रही है। हे भाई! इस शरीरकी भी यही दशा जानकर तू उससे ममत्व छोड़ कि जिससे उस एरण्डकी लकड़ीकी अपेक्षा अनन्त दुःखोंके कारणभूत ऐसा शरीर ही धारण नहीं करना पड़े। शरीरके प्रति अनुराग ही नये-नये शरीर धारणका कारण है ऐसा जानकर पूर्व महापुरुषोंने उस शरीरसे सर्वथा स्नेह छोड़ा था। २४९. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जिस प्रकार अंजुरी (खोबा)में भरा हुआ पानी क्रमसे धीरे-धीरे घटता जाता है, उसी प्रकार सूर्यका उदय-अस्त होता है और जीवन अल्प होता जाता है। जिस प्रकार करवत खींचनेसे लकड़ी कटती जाती है, उसी प्रकार काल क्षण-क्षण शरीरको क्षीण करता रहता है। ऐसा होने पर भी अज्ञानी जीव मोक्षमार्गकी खोज नहीं करता और लौकिक स्वार्थके लिये अज्ञानका भार ढ़ोता है, पर वस्तुओंमें प्रेम करता है, मन-वचन-कायके योगोंमें अहंबुद्धि करता है और सांसारिक विषय-भोगोंसे किंचित् भी विरक्त नहीं होता। २५०. *(श्री नाटक समयसार)*

❀ संसारमें प्राणियोंका जितना उग्र अहित इन्द्रिय-विषयरूपी शत्रु करता है उतना मदोन्मत्त हाथी, मांसलोलुपी सिंह, भयंकर राहु, क्रोधायमान राजा, अति तीक्ष्ण विष, अति क्रुद्ध यमराज, प्रज्वलित अग्नि तथा भयंकर शेषनाग आदि भी नहीं करते। अर्थात् हाथी आदि तो एक ही भवमें दुःख देते हैं अथवा अनिष्ट करते हैं परन्तु भोगे हुए इन्द्रिय विषय भव-भवमें दुःख देनेवाले हैं। २५१. *(श्री सुभाषित रत्नसन्दोह)*

❀ जैसे हलवाईके यहाँ छप्परमेंसे तेलकी उबलती हुई कड़ाहीमें गिरा हुआ सर्प आधा तो जल गया, परन्तु उस कष्टसे बचनेके लिये घबराकर भट्टीमें घुस जानेसे पूरेका पूरा जल गया। उसी प्रकार जगतके जीव पुण्य-पापमें तो जल ही रहे हैं और उसमें वे विशेष सुखकी लालसामें अधिक जलना पड़े–ऐसे विषयोंमें कूदकर सुख मानते हैं। २५२.

(दृष्टिके निधान)

❀ शरीराश्रित इन्द्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा गया है कि वे आत्माको अहितकारी विषयभोगोंका संभोग मिलाती हैं और उनमें तन्मय कराकर प्राणीको संसारमें भ्रमण कराती हैं, जो सम्यग्दृष्टि जिनवाणी पर विश्वास लाता है, वह आत्माके अतीन्द्रिय सुख पर निश्चय रखता हुआ इन्द्रियके सुखोंसे विरक्त रहता है। २५३.

(श्री उपदेश-शुद्धसार)

❀ जन्म-मरण जिसके माता-पिता हैं, आधि-व्याधि यह दोनों जिसके सहोदर भाई हैं और वृद्धावस्था जिसका परममित्र है ऐसे शरीरमें रहकर तू अनेक प्रकारकी चित्र-विचित्र आशामें बह रहा है यह एक आश्चर्य है। २५४. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ शत्रु, माता-पिता, स्त्रियाँ, भाई, पुत्र और स्वजन (यह सब) मेरे शरीरका अपकार-उपकार करते हैं, मेरे चेतन आत्माका नहीं। मेरे चेतन आत्मासे यह अचेतन शरीर वास्तवमें भिन्न है। इसलिये उन शत्रुओं पर द्वेष और स्वजनादिमें राग करना मेरे लिये कैसे उचित हो सकता है? क्योंकि वे मेरे आत्माका कोई अहित या हित नहीं करते। २५५.

(श्री योगसार प्राभृत)

❀ उन्मत्त पुरुषकी भाँति तथा वायुसे तरंगित समुद्रकी तरंगोंकी भाँति जीवोंको भोगाभिलाषा मात्र मिथ्यात्वकर्मके विपाकसे (विपाकवश होनेसे) व्यर्थ ही स्फुरित होती है। २५६. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

www.vitragvani.com

❀ साधु पुरुषका चित्त एक पका हुआ श्वेत केश देखनेसे ही शीघ्र वैराग्यको प्राप्त हो जाता है, परन्तु उससे विपरीत उन अविवेकी मनुष्यकी तृष्णा प्रतिदिन वृद्धत्वके साथ बढ़ती जाती है अर्थात् ज्यों-ज्यों उसकी वृद्धावस्था बढ़ती है त्यों-त्यों उत्तरोत्तर तृष्णा भी बढ़ती जाती है। २५७.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ देखो! भील अथवा व्याघ्रादिके भयसे भागती हुई चमरी गायकी पूंछ देव योगसे किसी काँटोंकी वाड़ या बेलमें उलझ जाती है तब वह गाय अपनी पूंछके रागवश वहीं खड़ी रह जाती है और वहाँ उसके पीछे पड़ा हुआ वनचर शिकारी उसे प्राणरहित कर देता है। वैसे ही जगतमें इन्द्रिय-विषयादिके तृषातुर जीवोंको बहुधा इसी प्रकार विपत्तियाँ प्राप्त होती हैं। २५८. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ इस शरीरकी विचित्रता देखा! निरोगी शरीर क्षणमें रोगरूप परिणमित हो जाता है। शरीरके रजकण जिस काल जैसे होना हों वैसे होंगे ही, उनमें कौन फेरफार कर सकता है? शरीरके परमाणुको कैसे रहना उसका तुझे क्या काम है? तुझे कैसे रहना उसकी संभाल तू कर ना! २५९. *(श्री दृष्टिके निधान)*

❀ इस मनुष्य शरीरके एक-एक अंगुलमें छ्यानवे-छ्यानवे रोग होते हैं; तो बाकी शरीरमें कितने रोग कहना उसे समझो! (सारे शरीरमें पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँचसौ चौरासी रोग रहे हुए हैं।) २६०. *(श्री भावपाहुड)*

❀ इस संसारमें देहादि समस्त सामग्री अविनाशी नहीं हैं, जैसा शुद्ध बुद्ध परमात्मा अकृत्रिम है, वैसा देहादिमेंसे कोई भी नहीं है। सब क्षणभंगुर हैं। शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे रहित जो मिथ्यात्व विषय-कषाय हैं, उनसे आसक्त होके जीवने जो कर्म उपार्जन किये हैं, उन कर्मोंसे जब यह जीव परभवमें गमन करता है तब शरीर भी साथ नहीं जाता।

इसलिये इस लोकमें इन देहादिक सबको विनश्वर जानकर देहादिकी ममता छोड़ना चाहिये, और सकल विभाव आत्म पदार्थकी भावना करनी चाहिये। २६१. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ भाई! तेरी यह सर्व प्रवृत्ति मुझे तो रेतीमें तेल शोधने जैसी अथवा विष प्राशन करके (खाकर) जीवन वृद्धि करनेकी इच्छा जैसी विचित्र और उन्मत्त लगती है। भाई आशारूपी ग्रह (भूत)का निग्रह करनेमें ही सुख है। तृष्णासे किसी काल या किसी क्षेत्रमें सुख नहीं है। यह संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण सूत्र क्या तेरी समझमें नहीं आता?–कि यह व्यर्थ परिश्रम (–प्रवृत्ति) तू कर रहा है! २६२. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ अरे! एकवाला (बालतोड़) शरीरमें निकलनेसे पीड़ाका पार नहीं रहता! तो यह मेरा शरीर, मेरा घर, मेरी स्त्री, पुत्र, मित्र, यह मेरा धन, प्रतिष्ठा इस प्रकार अनेक मेरे अर्थात् धनवाला, शरीरवाला, स्त्री, पुत्र, मित्रवाला ऐसे अनेक वालाकी पीड़ाका उसे भान नहीं है और पीड़ित रहता है। २६३. *(दृष्टिके निधान)*

❀ यहाँ संसारमें राजा भी दैववशात् रंक जैसा हो जाता है तथा पुष्ट शरीरवाला मनुष्य भी कर्मोदयसे क्षणभरमें मृत्युको प्राप्त होता है। ऐसी दशामें कौन बुद्धिमान पुरुष कमलपत्र पर पड़े हुए जल बिन्दुओंके समान विनष्ट होनेवाले धन, शरीर और जीवन आदि विषयमें अभिमान करेगा? अर्थात् क्षणमें क्षीण होनेवाले इन पदार्थोंके विषयमें विवेकीजन कदापि अभिमान नहीं करते। २६४. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ जो अज्ञानी जीव इन्द्रियोंके इच्छारूपी रोगोंका उपाय ही निश्चयसे करता रहता है और उसीको सुख मानता है इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है? २६५. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ आत्माको आत्माहीके द्वारा आत्मामें ही शरीरसे भिन्न ऐसा विचारना कि जिससे फिर यह आत्मा स्वप्नमें भी शरीरकी संगतिको प्राप्त

www.vitragvani.com

न हो अर्थात् मैं शरीर हूं ऐसी बुद्धि स्वप्नमें भी न हो ऐसा निश्चय करना चाहिये। २६६. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ जिसने तीनों भुवनको नीचा कर रखा है ऐसी वह आशारूपी खान अति गहरी है। संसार परिणामी जीवों द्वारा आजतक अपार द्रव्य डाले जाने पर भी अभीतक वह किसीके द्वारा भरी नहीं जा सकी ऐसी उस आशारूपी खानको सत्पुरुषोंने उसमें भरे हुए धनादिको निकाल निकालकर पूर्ण की है, यह एक परमआश्चर्य है। २६७.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ हे जीव! तूने इस लोकमें तृषासे पीडित होकर तीनलोकका समस्त जल पिया, तो भी तृषाका व्यवच्छेद न हुआ अर्थात् प्यास न बुझी, इसलिये तू इस संसारका मंथन अर्थात् तेरे संसारका नाश हो इसप्रकार निश्चयरत्नत्रयका चिंतन कर। २६८. *(श्री भावपाहुड)*

❀ संसारकी मनवांछित भोग-विलासकी सामग्री अस्थिर है, वह अनेक प्रयत्न करने पर भी स्थिर नहीं रहती। इसी प्रकार विषय-अभिलाषाके भाव भी अनित्य हैं; भोग और भोगकी इच्छाएँ इन दोनोंमें एकता नहीं है और नाशवान हैं। इसलिये ज्ञानियोंको भोगोंकी अभिलाषा ही उत्पन्न नहीं होती। ऐसे भ्रमपूर्ण कार्योंकी इच्छा तो मूर्ख लोग ही करते हैं, ज्ञानी तो सदा सावधान रहते हैं–पर पदार्थोंमें स्नेह नहीं करते, इसलिये ज्ञानियोंको वांछारहित ही कहा है। २६९.

(श्री नाटक समयसार)

❀ यदि इस दुर्गंधसे भरे हुए तथा मलिन शरीरसे सुखको करनेवाली स्वर्ग और मोक्षकी संपत्तियें प्राप्त की जाती हैं तब क्या हानि होती है? यदि निंदनीय निर्माल्यके द्वारा सुखदाई रत्न मिल जावे तब जगतकी मर्यादाको जाननेवाले किस पुरुषसे लाभ न माना जायगा? २७०.

(श्री तत्त्वभावना)

❀ संसारमें इन्द्रियजन्य जितने सुख हैं वे सब इस आत्माको तीव्र दुःखदायी हैं। इस प्रकार जो जीव इन्द्रिय-जन्य विषयसुखोंके स्वरूपका चिन्तवन नहीं करता वह बहिरात्मा है। २७१. *(श्री रयणसार)*

❀ जब किसी स्त्रीका पति मर जाय और वह विधवा हो जाय तो दुनिया उसे दुःखी हो गई कहती है, परन्तु वास्तवमें वह स्त्री दुःखी नहीं हुई किन्तु उसे आत्महित करनेके लिये निवृत्ति मिली है। यहाँ दुःखी उसे कहते हैं जो रागमें और पुण्य-पापके भावमें एकता मानकर आनन्दकन्द स्वभावको भूल गया है वह वास्तवमें दुःखी हुआ है। भगवानका मार्ग जगतसे भिन्न है। २७२. *(दृष्टिके निधान)*

❀ हाय! बड़े दुःखकी बात है कि–संसाररूपी कत्लखानेमें पापी और क्रोधी ऐसे इन्द्रिय-विषयरूप चाण्डालोंने चारों ओर रागरूप भयंकर अग्नि सुलगा रखी है, ताकि चारों ओरसे भयभीत हुए तथा अत्यन्त व्याकुल हुए पुरुषरूपी हिरन अपने बचावके लिये अन्तिम शरण चाहते–ढूँढ़ते हुए कामरूपी चाण्डालने बना रखे स्त्रीरूप कपटस्थानमें (फन्देमें) जा–जाकर फँस जाते हैं। २७३. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ जो औषधि रोगको दूर न कर सके वह वास्तवमें औषधि नहीं है। जो जल तृषाको शान्त न कर सके वह वास्तवमें जल नहीं है और जो धन आपत्तिका नाश न कर सके वह वास्तवमें धन नहीं है। उसी प्रकार विषयोंसे उत्पन्न हुआ सुख तृष्णाका नाश नहीं कर सकता इसलिये वह वास्तवमें सुख नहीं है। २७४. *(श्री आदिपुराण)*

❀ स्वप्नदशामें प्रत्यक्ष दिखायी दिये शरीरादिका नाश होने पर भी जैसे आत्माका नाश नहीं होता, वैसे ही जागृत दशामें भी देखे हुए शरीरादिकका नाश होने पर भी, आत्माका नाश नहीं होता; क्योंकि दोनों अवस्थाओंमें विपरीत प्रतिभासमें कोई अंतर नहीं है। २७५.

(श्री समाधितंत्र)

www.vitragvani.com

❀ इस देहका उवटना करो, तैलादिकका मर्दन करो, श्रृंगार आदिसे अनेक प्रकार सजाओ, अच्छे अच्छे मिष्ट आहार देओ, लेकिन ये सब यत्न व्यर्थ हैं, जैसे दुर्जनोंका उपकार करना वृथा है। २७६.

(श्री परमात्मप्रकाश)

❀ यह शरीर कैदखाना है, पुत्र तथा कुटुंबी उसके पहरेदार है। जो यह जानता है व दुःखका अनुभव नहीं करता है, वह बुद्धिमान है। परंतु मूर्खजन ही इसे अपना हितकारी मानता है। २७७.

(श्री बुधजन-सतसई)

❀ हे प्राणी! प्रायः प्रत्येक प्राणीका अंतःकरण वह आशारूपी महान, गहन, गम्भीर और अति गहरा गर्त (कुआँ) है। तथा वह अमर्यादित है। जिसमेंके एक गर्तमें इन तीनों लोककी समस्त विभूति मात्र एक अणुसमान सूक्ष्मरूपसे वर्तती है और जगतवासी प्राणी तो अनन्तानन्त हैं, तो उस तीनलोककी समस्त विभूतिका वितरण करने पर किस-किसको कितनी-कितनी आयगी? अर्थात् तीन लोककी समस्त विभूति कदाचित् एक ही प्राणीके हाथमें आ जाय, तब भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होगी। धनादि सर्व सम्पत्ति जगतमें संख्यात है, जबकि उसके ग्राहक अनंतानंत हैं। इसलिये हे आत्मा! तेरी यह विषयकी आकांक्षा व्यर्थ है। २७८. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ इस शरीरमें आत्माकी भावना अन्य शरीरग्रहणरूप भवान्तर प्राप्तिका बीज है और आत्मामें ही आत्माकी भावना वह शरीरके सर्वथा त्यागरूप मुक्तिका बीज है। २७९. *(श्री समाधितंत्र)*

❀ अरे! दिनभर व्यापार-धन्धे और स्त्री-बच्चोंकी ममतामें पापमय जीवन बिताता है उसका क्या होगा? मात्र ममता, ममता और ममताके फलमें मरकर ढोर होगा। यहाँ तो करोड़पति वणिक हो और मरकर शूकर होगा और विष्टा खायगा! उसे यह तो निश्चित करना चाहिये कि मेरा

क्या होगा? और मैं मरकर कहाँ जाऊँगा? २८०. *(दृष्टिके निधान)*

❀ शरीरसे प्रीति करना है सो आत्माकी उन्नत्तिसे बाहर रहना है, क्योंकि जो कोई शरीरके कामके करनेमें जाग रहा है वह त्यागनेयोग्य व करनेयोग्यके विचारसे शून्य मनवाला होता हुआ आत्माके कार्यमें अपना वर्तन नहीं रखता है। इसीलिये अपने आत्माके प्रयोजनको जो सिद्ध करना चाहता है उसको सदा ही शरीरका मोह छोड़ देना चाहिये। अपनी इच्छाको पूर्ण करनेवाला बुद्धिमान पुरुष अपने कामके रोकनेवाले कार्यमें उद्यम नहीं करता है। २८१. *(श्री तत्त्वभावना)*

❀ इस प्रकार अतिशय पीड़ाको प्राप्त हुआ वह क्रोधी मनुष्य साक्षात् राक्षस जैसा प्रतीत होता है! यहाँ कोई दूसरेको जलानेकी इच्छासे यदि अपने हाथमें अत्यंत तपे हुए लोहेको लेता है तो दूसरा जले अथवा न भी जले, किंतु जिस प्रकार वह स्वयं जलता है, उसी प्रकार शत्रुको मार डालनेका विचार करके क्रोधको प्राप्त हुआ मनुष्य दूसरेको घात करनेकी इच्छासे स्वयं दुःखको अवश्य प्राप्त होता है। उससे शत्रुका घात हो अथवा न भी हो यह अनिश्चित ही रहता है। २८२.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ "यह शरीर मेरा है और मैं इसका हूँ"-ऐसी दृढ़ श्रद्धा पूर्वक जीवको शरीरके साथ प्रीति है अर्थात् शरीररूपी क्षेत्रमें क्षेत्रीयरूपसे अर्थात् स्वामीरूपसे जब तक जीव प्रवर्त रहा है तब तक तपके परम फलरूप मोक्षकी आशा रखना व्यर्थ है। शरीरके प्रति एकत्वभावना मोक्षमार्गके प्रवासीको एक महान इति (-उपद्रव) समान विघ्नरूप है। २८३.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ हे आत्मन्! निज कुटुंबादिकके लिये तूने नरकादिके दुःख देनेवाले पापकर्म किये, वे पापी तुझे अवश्य ही धोखा देकर अपनी अपनी गतिको चले जाते हैं उनके लिये जो तूने पापकर्म किये थे, उनके फल

www.vitragvani.com

तुझे अकेले ही भोगने पड़ते हैं, वा भोगने पडेंगे। २८४.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ अनेक दुःखोंके समूहसे परिपूर्ण ऐसे संसारमें रहने वाले मनुष्य आपत्ति आने पर जो शोकाकुल होते हैं यह उनकी बहुत बड़ी भ्रान्ति अथवा अज्ञानता है। ठीक ही है–जो व्यक्ति भूत, प्रेत, पिशाच, सियार, और चतोंसे भरे ऐसे अमंगलकारी स्मशानमें मकान बनाकर रहता है वह क्या भय उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंसे कभी शंकित होगा? अर्थात् नहीं होगा। २८५. (श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ कोई समझे कि शरीर सम्बन्धी दुःख बड़ा है और मानसिक दुःख अल्प है। उससे यहाँ कहते हैं कि शारीरिक दुःखकी अपेक्षा मानसिक दुःख तीव्र है–बड़ा है। देखो! मानसिक दुःखसहित पुरुषोंको अन्य अनेक विषय हों तथापि वे दुःख उत्पन्न करनेवाले दिखायी देते हैं। २८६. (श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)

❀ सर्व अशुचिके मूलरूप शरीरको यह जीव जब पूज्यपद प्राप्त कराता है तब शरीर आत्माको चाण्डालादि नीच कुलमें जन्म देकर अस्पृश्य करता है। धिक्कार है इस कृतघ्न शरीरको! २८७.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ बाल सफेद हो जाते हैं, शरीरमें वृद्धत्व आ जाता है तथापि मनकी विकृतियाँ नहीं जातीं। सो ठीक ही है। क्योंकि जलती हुई झोंपडी तब तक नहीं बुझती जब तक कि वह पूर्ण रूपसे जल नहीं जाती। २८८. (श्री बुधजन-सत्सई)

❀ मनोहर वस्तुका नाश होनेपर यदि शोक करनेसे उसकी प्राप्ति होती हो, कीर्ति मिलती हो, सुख होता हो अथवा धर्म होता हो, तब तो शोक प्रारम्भ करना ठीक है। परन्तु यदि अनेक प्रयत्नों द्वारा भी उन चारोंमेंसे सम्भवतः कोई एक भी उत्पन्न नहीं होता हो तो फिर कौन

बुद्धिमान मनुष्य व्यर्थ उस शोकरूपी महाराक्षसके आधीन होगा? अर्थात् कोई नहीं। २८९. (श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ हे आत्मन्! इस संसारमें तूने इस शरीरको ग्रहण करके दुःख पाये वा सहे हैं इसीसे तू निश्चयकर जान कि यह शरीर ही समस्त अनर्थोंका घर है, इसके संसर्गसे सुखका लेश भी नहीं मान। २९०.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ हे मानवो! कषायोंको कम करके पंचेन्द्रियके विषयोंका सेवन नहीं करना। इसका पथ्य या हितकारी उपाय उत्तम निर्दोष सम्यग्दर्शन है। २९१. (श्री सारसमुच्चय)

❀ शरीरकी किंचित् मात्र संगति ही सर्व दुःखोंका कारण है, ऐसा जानकर शरीरको फेंक देते समय हाथकी कलाई पकड़कर रोकनेवाला ज्ञान यदि उपस्थित न होता तो कौन मुनि कृतघ्न शरीरके साथ क्षणमात्र भी रहनेकी इच्छा करेगा?–कोई नहीं। २९२. (श्री आत्मानुशासन)

❀ मित्रता, तप, व्रत, कीर्ति, नियम, दया, सौभाग्य, भाग्य, शास्त्राभ्यास और इन्द्रियदमन आदि ये सब मनुष्यके गुण क्रोधरूप महान वैरीसे पीड़ित होकर क्षणभरमें इस प्रकारसे नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार कि तीव्र अग्निसे सन्तप्त होकर जल नष्ट हो जाता है। २९३.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ यदि ऐसा पूछा जाय कि देवगतिको प्राप्त देवेन्द्रोंको तो बहुत सुख होता है तो फिर देवगतिके सर्व जीवोंको दुःख सहन करनेवाले क्यों कहा है?–तो उसका समाधान यह है कि–देवेन्द्रोंको इन्द्रिय–विषयोंसे उत्पन्न जो सुख होता है वह दाह उत्पन्न करनेवाली तृष्णा देनेवाला है, उसे वास्तवमें दुःख समझना चाहिये। २९४.

(श्री योगसार प्राभृत)

www.vitragvani.com

❀ शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रेम तथा शुद्ध आत्मज्ञानका प्रेम कर्मोंका क्षय करनेवाला है। परंतु यदि शरीरका मोह हो तो अनंतानंत पर्यायोंको यह जीव धारण करता रहता है। २९५. *(श्री उपदेशशुद्धसार)*

❀ जैसे कोई पुरुष रत्नद्वीपको प्राप्त होने पर भी रत्नद्वीपमेंसे रत्नोंको छोड़कर काष्ठ ग्रहण करता है, वैसे ही मनुष्य भवमें धर्म-भावनाका त्याग करके अज्ञानी भोगकी अभिलाषा करते हैं। २९६.

(श्री भगवती आराधना)

❀ कायविकारको छोड़कर जो पुनः पुनः शुद्धात्माकी सम्भावना (सम्यक्‌भावना) करता है उसीका जन्म संसारमें सफल है। २९७.

(श्री नियमसार-टीका)

❀ हे असंतोषी आत्मा! सर्व जगतकी मायाको अंगीकार करनेकी अभिलाषारूप परिणामसे तो तूने इस जगतमें कुछ भी नहीं छोड़ा है। तुझमें जो कुछ बच पाया हो वह तो तेरी भोग करनेकी अशक्तिसे ही बचा है। जिस प्रकार राहुसे ग्रसित चन्द्र-सूर्य यदि बच पाये हों तो वे मात्र राहुकी अशक्तिसे ही बचे हैं। २९८.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ जिस प्रकार चन्द्रमा आकाशमें निरन्तर चक्कर लगाता रहता है उसी प्रकार यह प्राणी संसारमें सदा परिभ्रमण करता रहता है; जैसे चन्द्रमा उदय-अस्त एवं कलाओंकी हानि-वृद्धिको प्राप्त होता रहता है उसी प्रकार संसारी प्राणी भी जन्म-मरण तथा सम्पत्तिकी हानि-वृद्धिको प्राप्त होता रहता है; जैसे चन्द्रमा मध्यमें कलुषित (काला) रहता है उसी प्रकार संसारी प्राणीका हृदय भी पापसे कलुषित रहता है तथा जिस प्रकार चन्द्र एक राशि (मीन-मेष आदि) से दूसरी राशिको प्राप्त होता है तदनुसार संसारी प्राणी भी एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरका ग्रहण करता रहता है। ऐसी स्थिति होने पर भी सम्पत्ति और विपत्तिकी प्राप्तिमें जीवको हर्ष और

विषाद किसलिये करना चाहिये? अर्थात् नहीं करना चाहिये। २९९.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ संयमी जीवोंके मनमें, असंयमी (अज्ञानी)जनोंको देखकर बड़ा संताप होता है कि अरेरे! देखो तो सही, संसाररूपी कुएँमें डूबने पर भी यह जीव क्यों नाच रहे हैं! ३००.

(श्री उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला)

❀ जो मोही जीव है वह इस संसारको आधि-मानसिक क्लेश, व्याधि—शारीरिक कष्ट प्रद रोग, जन्म, जरा, मरण और शोकादि उपद्रवोंसे युक्त भयंकररूपमें देखता होने पर भी उससे विरक्त नहीं होता! यह मोहका कैसा माहात्म्य? ३०१. *(श्री योगसार प्राभृत)*

❀ आचार्य महाराज कहते हैं कि हे प्राणी! वल्लभा अर्थात् प्यारी स्त्रियोंका संगम आकाशमें देवोंसे रचे हुए नगरके समान है, अतः तुरन्त विलुप्त हो जाता है और तेरा यौवन वा धन जलदपटलके समान है सो भी क्षणिकमें नष्ट हो जानेवाला है तथा स्वजन परिवारके लोग पुत्र शरीरादिक बिजलीके समान चंचल हैं। इस प्रकार जगतकी अवस्था अनित्य जानके नित्यताकी बुद्धि रख। ३०२. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ अज्ञानीजन, दल-बल-असत्य आदिके प्रयोग द्वारा समस्त कार्य करते हैं। धर्म व नैतिकताकी चिंता वे नहीं करते। परंतु बुद्धिमान मानव ऐसा कार्य करते हैं जिसमें उनका धर्म न बिगडे व नैतिकता बनी रहे। ३०३. *(श्री बुधजन-सतसई)*

❀ हे भोले प्राणी! तूने इस पर्यायसे पूर्व सर्व कार्य 'अजाकृपालीयवत्' किये हैं। कोई मनुष्य बकरीको मारनेके लिये छुरी ढूँढ़ता था और बकरीने ही अपने खुरसे अपने नीचे दबी हुई छुरी निकाल दी, जिससे उसी छुरीसे उस मूर्ख बकरीका मरण हुआ। उसी प्रकार जिन

कार्योंसे तेरा घात हो—अहित हो वही कार्य तूने किया; वास्तवमें तू हेय-उपादेयके विवेकसे रहित मूर्ख है। ३०४. (श्री आत्मानुशासन)

❀ जीवोंका सच्चा स्वार्थ अपने स्वरूपमें स्थिर होनेमें है, क्षण-भंगुर भोग भोगनेमें नहीं। भोग भोगनेसे तो तृष्णा बढ़ जाती है, संतापकी शान्ति नहीं होती। हे सुपार्श्वनाथ! आपने ऐसा उपदेश दिया है। ३०५.

(श्री स्वयंभू स्तोत्र)

❀ यह चिदानन्द चौरासी लाख योनिके शरीरोंका सुधार करता रहता है। जिस घरमें रहे उसे सुधारे, फिर दूसरी शरीर-झोंपड़ीको सुधारे, तथा फिर दूसरी प्राप्त करे उसे सुधारता फिरता है। सब शरीर जड़, और जड़ोंकी सेवा करते-करते अनादिकाल व्यतीत हो गया, यह शरीरसेवाका कर्मरोग अनादिसे लगा आ रहा है। इसलिये यह रोग अपना अनन्तबल क्षीणपनेको प्राप्त हुआ इससे महान विपत्ति—जन्मादि भोगता है। ३०६.

(श्री अनुभवप्रकाश)

❀ जिस मनुष्यके, बिना किसी कारणके ही, क्रोध उत्पन्न हुआ करता है वह गुणवान भी क्यों न हो, किंतु उसकी कोई भी भक्ति नहीं करता है। ठीक है—ऐसा कौनसा बुद्धिमान मनुष्य है जो कि अनेक तीव्र रोगोंको नष्ट करनेवाले मणिसे भी युक्त होने पर बार बार काटनेके अभिमुख हुए आशीविष सर्पसे प्रेम करता हो? अर्थात् कोई नहीं करता!! क्रोध एक प्रकारका वह विषैला सर्प है कि जिसके केवल देखने मात्रसे ही प्राणी विषसे सन्तप्त हो उठता है। ३०७.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ जिस संसारभयसे श्री तीर्थंकरादि भयभीत हुए उस संसारभयसे जो रहित है वह महान सुभट है। ३०८.

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

❀ अंध पुरुषका स्वभाव ही अंधा होता है। उसे कुछ दिखता ही नहीं है। इसीतरह जो मिथ्यात्वके उदयसे अंधा है वह हित-अहित धर्म-अधर्म पर दृष्टि न देता हुआ अज्ञानसे कुआचरण करके भोगोंमें लिप्त होकर दुःखका बीज बोता है, अनंतानंत दोषोंका पात्र होता है। संसारमें नरकगतिमें जाता है या निगोदमें दीर्घकाल बिताता है। ३०९.

(श्री उपदेश-शुद्धसार)

❀ कलिकालमें नीति ही दण्ड है, दण्डसे न्यायमार्ग चलता है, राजाके सिवा वह दण्ड देनेमें कोई समर्थ नहीं है, परन्तु राजा धनके अर्थ न्याय भी करता है। धनप्राप्तिरूप प्रयोजनके बिना राजा न्याय भी नहीं करता—इस प्रकार न्याय इस कालमें इतना महँगा हो गया है। ३१०.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ अहो! देखो! स्वर्गका देव तो रोता पुकारता तथा स्वर्गसे नीचे गिरता है और कुत्ता स्वर्गमें जाकर देव होता है एवम् श्रोत्रिय अर्थात् क्रियाकांडका अधिकारी अस्पर्श रहनेवाला ब्राह्मण मरकर कुत्ता, कृमि अथवा चंडालादि हो जाता है। इस प्रकार इस संसारकी विडम्बना है। ३११. (श्री ज्ञानार्णव)

❀ इस पृथ्वी पर जो मूर्ख मनुष्य हैं वे भी दुःखका नाश करनेके लिये प्रयत्न करते हैं; तथापि अपने कर्मके प्रभावसे उस दुःखका विनाश न भी हो तब भी वे इतने मूर्ख नहीं हैं। हम तो उन्हीं मूर्खोंको मूर्खोंमें शिरोमणि अर्थात् अत्यन्त मूर्ख मानते हैं कि जो किसी इष्ट मनुष्यका मरण होनेपर पाप एवं दुःखके निमित्तभूत शोक को करते हैं। ३१२.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ हे आत्मन्! तू निगोदके वासमें एक अन्तर्मुहूर्तमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार मरणको प्राप्त हुआ। ३१३. (श्री भावपाहुड)

www.vitragvani.com

❀ हे पिताजी! हे माताजी! जब भवनमें आग लग जाय तब बुद्धिमान मनुष्य बाहर भागनेका प्रयत्न करता है, परन्तु शत्रु होता है वह उसे पकड़कर फिरसे आगमें फेंकता है। उसी प्रकार मोहरूपी ज्वालासे धधकता यह संसार है, उस संसार-दुःखकी अग्निज्वालासे मैं बाहर निकलना चाहता हूँ तब आप किसी शत्रुकी भाँति मुझे फिरसे अग्निज्वालामें मत फेंकना। ३१४. *(श्री वरांगचरित्र)*

❀ जबतक यह शरीररूपी पर्वत मरणरूपी वज्रसे नहीं गिराया जावे तबतक कर्मरूपी शत्रुओंके नाश करनेमें मनको लगाना चाहिये। ३१५.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ जैसे कीड़ा विष्टामें रतिमान रहा है, वैसे ही तू कामसे अंध होकर स्त्रीके दुर्गन्धित सड़े हुए कलेवरमें रतिमान रहा है, क्योंकि कामांध पुरुषको भले-बुरेका विवेक ही नहीं होता। हे भव्य! महा अंधकार समान यह कामांधता छोड़कर अब तो कुछ विवेकी हो! ३१६.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ जिस प्रकार चीटी मिठाईके चारों ओर आकर चिपक जाती है उसी प्रकार परिवारजन चारों ओरसे तुझसे लिपट रहे हैं और तू उनमें सुख मान रहा है यही तेरा भोलापन है, अज्ञानता है। ३१७.

(श्री बुधजन-सतसई)

❀ जिस प्रकार अतिशय कीचड़में धँसी हुई गाड़ीको बलवान धवल वृषभ बाहर निकालते हैं, वैसे ही इस लोकमें मिथ्यात्वरूपी कीचड़में फँसे हुए अपने कुटुम्बको उसमेंसे कोई उत्तम बिरले पुरुष ही बाहर निकालते हैं। ३१८. *(श्री उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला)*

❀ (संसारसे वैराग्य होने पर चक्रवर्ती सोचता है कि) यह चक्रवर्तीका साम्राज्य कुम्हारकी जीवनीके समान है क्योंकि जिस प्रकार

कुम्हार अपना चक्र (चाक) घुमाकर मिट्टीसे बने हुए घडे आदि वर्तनोंसे अपनी आजीविका चलाता है, उसी प्रकार चक्रवर्ती भी अपना चाक (चक्ररत्न) घुमाकर मिट्टीसे उत्पन्न हुए रत्न या कर आदिसे अपनी आजीविका चलाता है—भोगोपभोगकी सामग्री जुटाता है। इसलिये इस चक्रवर्तीके साम्राज्यको धिक्कार है। ३१९. *(श्री आदि पुराण)*

❀ सूर्य कदाचित् स्तब्ध हो सकता है, चंद्रमा कदाचित् तीक्ष्ण हो सकता है, आकाश कदाचित् स्तब्ध हो सकता है—सीमित या स्थानदानक्रियासे शून्य हो सकता है, समुद्र कदाचित् नदियोंके जलसे संतुष्ट हो सकता है, वायु कदाचित् स्थिर हो सकती है, तथा अग्नि भी कदाचित् दाहक्रियासे रहित हो सकती है; परंतु लोभरूप अग्नि कभी भी दाहक्रियासे रहित नहीं हो सकती है। ३२०. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ आचार्य महाराज कहते हैं कि यह बड़ा आश्चर्य है जो जीवोंका अज्ञानसे उत्पन्न हुआ यह आग्रह (हठ) सेंकड़ों उपदेश देने पर भी दूर नहीं होता! हम नहीं जानते कि इसमें क्या भेद है!

एक बार मिथ्याशास्त्रकी युक्ति भोलें जीवोंके मनमें ऐसी प्रवेश हो जाती है कि फिर सेंकड़ों उत्तमोत्तम युक्तियें सुने तो भी वे चित्तमें प्रवेश नहीं करती है! अर्थात् ऐसा ही कोई संस्कारका निमित्त है कि वह मिथ्या आग्रह कभी दूर नहीं होता। ३२१. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ वास्तविक तो यह है कि जिसके योगसे रोग उत्पन्न होता है अथवा होनेकी निरन्तर शंका बनी रहती है उसका तू निर्मूल नाश कर! शरीरसे रोग उत्पन्न होता है और उस दुःखसे निरन्तर दुःखी रहना पड़ता है, तो अब कुछ ऐसा कर कि जिससे यह शरीर ही पुनः उत्पन्न न हो। सरलतासे तथा निर्दोष औषधिसे रोग दूर हुआ तो ठीक, नहीं तो शरीर छूटने जैसे अन्तिम क्षणोंमें सम्यक् साम्यभावका अनुसरण करना वह भी रोगका सबसे प्रबल प्रतिकार ही है—ऐसा तू समझ। ३२२.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ कोई मनुष्य शुद्ध, स्वादिष्ट, स्वच्छ, अमृत जैसे मिष्टान्न-भोजन करता हो और शत्रु उसमें विष मिला दे; वैसे ही मैं इस समय संसारसे विरक्त होकर, अपने अंतरमें धर्मरूपी परम अमृतका भोजन लेनेको तत्पर हुआ हूँ उस समय उसमें राज्यलक्ष्मीके भोगका विष मिलाकर आप स्वजन शत्रुकार्य मत करना। ३२३. (श्री वरांग चरित्र)

❀ जिस प्रकार करवतसे लकडी कटती है उसी प्रकार रात-दिनके द्वारा तेरी आयुके निषेक क्षीण होते हैं अतः शीघ्रातिशीघ्र अपना भला करो, क्योंकि यह ठाठ-बाट तो यहीं पड़ा रह जायगा। ३२४.

(श्री बुधजन-सतसई)

❀ यदि सूर्यकी किरणसमूहमें कदाचित् ठंडकपना हो जावे तथा चंद्रमामें गर्मी हो जावे व कदाचित् सुमेरुपर्वतमें जंगमपना या हलनचलनपना प्राप्त हो जावे तो हो जावे, परंतु कभी भी दुःखोंकी खान इस भयानक संसारके चक्रमें भ्रमण करते हुए पुरुषको प्रगटपने सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। ३२५. (श्री तत्त्वभावना)

❀ माताके गर्भमें रहनेसे जो दुःख होता है वह नरककी भाँति अतिशय तीव्र होता है तथा कुंभीपाक समान होता है। (घड़ेकी भाँति शरीरको अग्निमें डालते हैं।) नरकमें नारकी जीव अन्य नारकीको खूब तड़पा-तड़पाकर जलाते हैं वैसा दुःख जीवको गर्भमें होता है। तथा गर्भाशय रक्तसे अत्यन्त घृणास्पद है। ऐसे गर्भमें मुझे रहना पड़ेगा ऐसा भय जिसके मनमें उत्पन्न होनेसे, उससे दूर रहनेके लिये मुनिराज सदैव जिनवाणीके चिन्तनमें तत्पर होते हैं। ३२६. (श्री मूलाचार)

❀ जिस प्रकार लहरोंसे उछलते हुए भीषण समुद्रके बीच अथक प्रयत्नपूर्वक तैरता हुआ कोई पुरुष किनारे तक आया और कोई शत्रु उसे धक्का मारकर फिर समुद्रमें धकेले; वैसे ही हे माता-पिता! दुर्गतिके दुःखोंसे भरे हुए इस घोर संसार-समुद्रमें अनादिसे डूबा हुआ मैं वैराग्य

द्वारा इस समय जैसे-तैसे किनारे पर आया हूँ, तो पुनः आप मुझे संसार-समुद्रमें मत धकेलना। घरमें रहनेको मत कहना। ३२७.

(श्री वरांग चारित्र)

❀ अनन्त संसार परिपाटीके कारणरूप विवाहादि कार्य करने-करानेवाले जो अपने कुटुम्बीजन वे ही वास्तवमें इस जीवके एक प्रकारसे शत्रु हैं। जो एक ही बार प्राणहरण करे वह शत्रु नहीं है परन्तु यह तो अनन्तबार मरण कराते हैं इसलिये वे शत्रु हैं, इसलिये उन्हें हितैषी मानकर उनके प्रति राग करना अथवा उनके रागमें अंध होना वह उचित नहीं है। ३२८. (श्री आत्मानुशासन)

❀ धर्मात्मा प्राणीको विषैला सर्प हार बन जाता है, तलवार सुन्दर फूलोंकी माला बन जाती है, विष भी उत्तम औषधि बन जाती है, शत्रु प्रेम करने लगता है और देव प्रसन्नचित्त होकर आज्ञाकारी हो जाते हैं। अधिक क्या कहना? जिसके पास धर्म हो उसके ऊपर आकाश भी निरन्तर रत्नोंकी वर्षा करता है। ३२९. (श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ देखो यह पुण्यका ही माहात्म्य है जो कि प्राणोंको हरण करनेवाला हलाहल विष भी अमृत बन जाता है, विष भी निर्विष हो जाता है, शाकिनी भूत-पिशाच आदिका उपद्रव पुण्यशाली जीवको नहीं होते हैं, उसको देखते ही भाग जाते हैं, धर्मात्मा पुरुषके पगतले, धर्मके प्रभावसे, भयानक फुंकार करता हुआ, क्रोधसे लाल हो गये हैं नेत्र जिसके ऐसा सर्प भी कांचलीसा बन जाता है। भयानक अग्नि जलके रूपमें परिणम जाती है, सिंह सियार बन जाता है, समुद्र थल बन जाता है, धर्मका ही यह प्रभाव है कि धर्मात्माके चरणोंको राजा महाराजा चक्रवर्ती आदि तक पूजते हैं। ३३०. (श्री पांडव पुराण)

❀ संसारसे उत्पन्न दुर्निवार आतंक (दाहरोग) रूपी महाकष्टसे पीडित इस जीवसमूहको देखकर ही योगीजन शांतभावको प्राप्त हो गये। संसारमें

www.vitragvani.com

जीवोंको प्रत्यक्ष दुःखी देखकर ज्ञानीजन क्यों मोहित हो? ३३१.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ उसी एक जन्मके नाश करनेवाले हलाहल विषको खा लेना अच्छा है परंतु अनंत जन्मोंमें दुःख देनेवाले भोगरूपी विषको भोगना ठीक नहीं है। ३३२. (श्री सारसमुच्चय)

❀ पुत्र, स्त्री, आदिका प्यार जूठा है। सारा परिवार ही ठगिया सा जान पड़ता है। क्योंकि ये लोग मीठी वाणी बोलकर हमारा ज्ञानधन लूट लेते हैं। हमें मोहमें डाल देते हैं। ३३३.

(श्री बुधजन-सतसई)

❀ प्रति क्षण जो आयुकी हानि हो रही है वह यमराजका मुख है, उसमें सभी प्राणी पहुँचते हैं अर्थात् समस्त प्राणियोंका मरण अनिवार्य है। तथापि एक प्राणी दूसरे प्राणीकी मृत्यु होने पर शोक क्यों करता है? अर्थात् यदि समस्त संसारी प्राणियोंका मरण अनिवार्य है, तो एकको दूसरेके मरने पर शोक करना उचित नहीं है। ३३४.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ संसारसे उत्पन्न हुई अपनी ज्वालाओंके समूहसे लोकको भस्म कर देनेवाली अग्निमें प्रवेश करना अच्छा है, जिसमें बड़ी बड़ी लहरें उठ रही हैं तथा जो मगर व घडयाल आदि हिंसक जलजंतुओंसे भयको उत्पन्न करनेवाला है ऐसे समुद्रके जलमें प्रवेश करना अच्छा है अथवा जहाँ नाना प्रकारके बाणों (शस्त्रों)के द्वारा अनेक शूरवीर मारे जा रहे हों ऐसे शत्रुओंसे भयानक युद्धमें भी प्रवेश करना अच्छा है, परंतु सैकड़ों भवोंमें अनंत दुःखको उत्पन्न करनेवाले स्त्रीसुखके मध्यमें प्रवेश करना अच्छा नहीं है। (तात्पर्य यह कि स्त्रीजन्य सुख उपर्युक्त जाज्वल्यमान अग्नि आदिसे भी भयानक है)। ३३५. (श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ आशारूपी खान निधियोंसे भी अतिशय अगाध है। तथा वह इतनी अधिक गहरी और विशाल है कि जो त्रिलोककी समस्त विभूतिसे भी भरना असम्भव है। मात्र एक आत्मगौरव–आत्ममहत्तारूप धनके द्वारा वह सहजमें ही भर जाती है कि जो हजारों प्रकारकी तृष्णारूप दुःखद व्याकुलताका शमन करनेमें एक अद्वितीय अमोघ औषधि है। ३३६.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ अज्ञानी–बहिरात्मा जिनमें–शरीर, पुत्र, मित्रादि बाह्य पदार्थोंमें–विश्वास करता है उनसे–शरीरादि बाह्य पदार्थोंसे–दूसरा कोई भयका स्थान नहीं है और जिससे–परमात्मस्वरूपके अनुभवसे वह डरता है। उससे दूसरा कोई आत्माको निर्भयताका स्थान नहीं है। ३३७.

(श्री समाधितंत्र)

❀ इन्द्रियोंके भोगोंसे होनेवाला सुख सुखसा दिखता है, परंतु वह सच्चा सुख नहीं है। वह तो कर्मोंका विशेष बंध करानेवाला है तथा दुःखोंके देनेमें एक पंडित है अर्थात् महान दुःखदायक है। ३३८.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ इस संसारमें सुख तो दो दिनका है, फिर तो दुःखोंकी परिपाटी है; इसलिये हे हृदय! मैं तुझे सीख देता हूँ कि अपने चित्तको तू वाड़ लगा अर्थात् मर्यादामें रख और सत्यमार्गमें लगा। ३३९.

(श्री पाहुड दोहा)

❀ जीव और शरीर दूध और पानीकी भाँति मिले हुए हैं तथापि इकट्ठे–एकरूप नहीं हैं, भिन्न–भिन्न हैं; तब फिर जो बाह्यमें प्रगट रूपसे भिन्न दिखायी देते हैं ऐसे लक्ष्मी, मकान, स्त्री, पुत्रादि मिलकर एक कैसे हो सकते हैं? ३४०. (श्री छहढाला)

❀ प्रेमके समान कोई बन्धन नहीं है। विषयके समान कोई विष

www.vitragvani.com

नहीं है। क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है। जन्मके समान कोई दुःख नहीं है। सबसे बड़ा बन्धन प्रेम है, सबसे बड़ा विष विषय है, सबसे बड़ा शत्रु क्रोध है, सबसे बड़ा दुःख जन्म है। ३४१.

(श्री चन्द्रप्रभ चरित्र)

❀ मुझे इष्ट पदार्थोंका वियोग न हो जाय तथा अनिष्ट पदार्थोंका संयोग न हो जाय—इस प्रकारसे इस जन्ममें आक्रंद करनेको इहलोक-भय कहते हैं, तथा न जाने यह धन स्थिर रहेगा या नहीं, दैवयोगसे कदाचित् दरिद्रता प्राप्त न हो जाय? इत्यादि मानसिक व्यथारूप चिन्ता मिथ्यादृष्टियोंको जलानेके लिये सदैव सुलगती ही रहती है। ३४२.

(श्री पंचाध्यायी)

❀ हे वत्स! विषय-कषायोंको छोड़कर मनको आत्मामें स्थिर कर, ऐसा करनेसे चारगतिका चूरा करके तू अतुल परमात्मपदको प्राप्त करेगा। ३४३.

(श्री पाहुड दोहा)

❀ तृष्णाकी आगसे पीड़ित मन अतिशय करके जला करता है। संतोषरूपी जलके बिना उस जलनका शमन नहीं किया जा सकता। ३४४.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ बुद्धिमान लोग अपने इच्छारूपी रोगोंका शमन करते हैं, उनसे हटाकर अपनी आत्माको आत्मस्वरूपकी ओर लगाते हैं, वह ही परम तत्त्व है। यह बात ब्रह्मज्ञानी संतोंने कही है। ३४५.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ मिथ्यादृष्टि जीव शरीरके उत्पन्न होनेसे अपना आत्मा उत्पन्न हुआ ऐसा मानता है, और शरीरका नाश होनेसे आत्माका नाश अथवा मरण हुआ ऐसा मानता है। राग, द्वेष, मोहादि स्पष्ट–प्रगटरूपसे दुःख देनेवाले हैं तथापि उनका सेवन करता हुआ सुख मानता है। ३४६.

(श्री छहढाला)

❀ मैं निरोग बन जाऊँ, मुझे कभी भी वेदना नहीं होओ,–ऐसे प्रकारकी मूर्छा–ममत्व ही अथवा बारम्बार चिन्तवन करना वह वेदना भय कहलाता है। ३४७.

(श्री पंचाध्यायी)

❀ हे मूढ प्राणी! यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि इस संसारमें जो वस्तुओंका समूह है सो पर्यायोंसे क्षणक्षणमें नाश होनेवाला है। इस बातको तू जानकर भी अजान हो रहा है, यह तेरा क्या आग्रह है? क्या तुझ पर कोई पिशाच चढ़ गया है कि जिसकी औषधि ही नहीं है? ३४८.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ जैसे दुर्जनके प्रति किये हुए उपकार व्यर्थ जाते हैं वैसे ही हे जीव! तू इस शरीरको नहलाकर तेल मर्दन कर तथा उसे सुमिष्ट आहार दे वह सब निरर्थक जाना है अर्थात् यह शरीर तुझ पर कोई उपकार करनेवाला नहीं है इसलिये तू उसका ममत्व छोड़! ३४९.

(श्री पाहुड दोहा)

❀ हे जीव! तू इसको गृहवास मत जान, यह पापका निवास-स्थान है। यमराजने अज्ञानी जीवोंके बांधनेके लिये यह अनेक फांसोंसे मंडित बहुत मजबूत बंदीखाना बनाया है, इसमें संदेह नहीं है। ३५०.

(श्री परमात्मप्रकाश)

❀ मेरी आयु बहुत लम्बी है, हाथ-पैर आदि सारे अवयव खूब स्वस्थ हैं, यह लक्ष्मी भी मेरे वशमें है, तो फिर मैं व्यर्थ ही व्याकुल क्यों होऊँ? आगामी कालमें जब वृद्धावस्था आयगी तब मैं निश्चिंत होकर खूब धर्म करूँगा। खेदकी बात है कि इस प्रकारके विचार करते–करते यह मूर्ख प्राणी कालकवलित हो जाता है। ३५१.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ शरीरके संबंधका यह स्वरूप है जो घर, कुटुंब, सर्व संबंध

www.vitragvani.com

आकर मिल जाते हैं, श्री जिनवचनके ग्रहणमें अंतराय पड़ जाता है, शरीरके स्वभावमें लय होनेसे नरकका बीज बोया जाता है, शरीरके संबंधसे ऐसा स्वभाव बन जाता है जिससे पौद्गलिक पर्यायको ही व कर्मके उदयको ही आत्मा मान लेता है। इस अज्ञान और मिथ्यात्वकी अनुमोदना करनेसे नरकके दुःखोंका बीज बो दिया जाता है। ३५२.

(श्री उपदेश शुद्धसार)

❀ जो पुद्गल वर्तमानकालमें शुभ दिखायी देते हैं वही पुद्गल पूर्व अनन्तभवमें दुःखदायक अशुभरूपसे परिणमित हुए थे और जो पुद्गल वर्तमानकालमें अशुभ दिखायी देते हैं वही पूर्वमें अनन्त बार सुखदायक हुए थे। सर्वप्रकारके पुद्गल द्रव्य अनन्तबार आहार-शरीर-इन्द्रियरूप परिणमित होने पर उन सर्वको अनन्तबार भोगा और त्याग किया, ऐसे सर्व पुद्गलके ग्रहण-त्यागमें क्या आश्चर्य है? ३५३.

(श्री भगवती आराधना)

❀ जो पुरुष, स्त्री आदि विषयोंका उपभोग करता है उसका सारा शरीर कांपने लगता है, श्वास तीव्र हो जाती है और सारा शरीर पसीनेसे तर हो जाता है। यदि संसारमें ऐसा जीव भी सुखी माना जावे तो फिर दुःखी कौन होगा? जिस प्रकार दांतोंसे हड्डी चबाता हुआ कुत्ता अपनेको सुखी मानता है, उसी प्रकार जिसकी आत्मा विषयोंसे मोहित हो रही है ऐसा मूर्ख प्राणी ही विषय-सेवन करनेसे उत्पन्न हुए परिश्रममात्रको ही सुख मानता है। ३५४. *(श्री आदिपुराण)*

❀ पापको बांधनेवाले भोगोंसे कौन ऐसा है जिसको तृप्ति हो सकती हो, चाहे वह देव हो या इन्द्र हो या चक्रवर्ती हो या राजा हो। ३५५. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ यदि जिनवरेन्द्रोंने मोक्षके अभिलाषीको 'देह परिग्रह है'—ऐसा कहकर देहमें भी अप्रतिकर्मपने (संस्कार रहितपने)का उपदेश दिया है, तो

फिर उनका ऐसा आशय है कि उसको अन्य परिग्रह तो काहेका होगा? ३५६. *(श्री प्रवचनसार)*

❀ यह शरीरादि दृश्य पदार्थ चेतनारहित जड़ हैं और जो चैतन्यरूप आत्मा है वह इन्द्रियों द्वारा दृष्टिगोचर हो ऐसा नहीं है; इसलिये मैं किसके ऊपर रोष करूँ? और किस पर सन्तुष्ट होऊँ? इसलिये मैं मध्यस्थ होता हूँ—ऐसा अन्तरात्मा विचारता है। ३५७. *(श्री समाधितंत्र)*

❀ इस जगतमें जीवोंकी समस्त कामनाओंके पूर्ण करनेवाली लक्ष्मी हुई और वह भोगनेमें आई तो उससे क्या लाभ? अथवा अपनी धन-संपदादिकसे परिवार स्नेही मित्रोंको संतुष्ट किया तो क्या हुआ? तथा शत्रुओंको जीतकर उनके मस्तक पर पांव रख दिये तो इसमें भी कौनसी सिद्धि हुई? तथा इसी प्रकार शरीर बहुत वर्ष पर्यंत स्थिर रहा तो उस शरीरसे क्या लाभ? क्योंकि ये सब ही निःसार और विनश्वर है। ३५८.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ धन, यौवन, जीवन जलके बुद्बुदेकी भाँति तुरन्त विलयको प्राप्त हो जाते हैं ऐसा देखते हुए भी यह प्राणी उन्हें नित्य मानता है यही महान आश्चर्य है-यही मोहका महा बलवान माहात्म्य है।

हे भव्य जीव! तू समस्त विषयोंको विनाशीक सुनकर महा मोहको छोड़कर अपने अंतःकरणको विषयोंसे रहित बना, जिससे तू उत्तम सुखको प्राप्त होगा। ३५९. *(श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

❀ जैसे खाजके रोगसे पीड़ित हुआ पुरुष आसक्त बनकर खुजाने लग जाता है; पीड़ा न होती हो तो वह किसलिये खुजाये? वैसे ही इन्द्रिय रोगसे पीड़ित हुए इन्द्रादिक देव आसक्त होकर विषयसेवन करते हैं, पीड़ा न हो तो वे किसलिये विषय सेवन करें? ३६०.

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

www.vitragvani.com

❀ इस संसारचक्रमें घूमते हुए इस जीवने एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक ऐसा एक भी शरीर नहीं कि जो इसने धारण नहीं किया। इस संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं जो इस जीवने नहीं भोगा। ऐसी कोई गति नहीं जो इस गतिमान जीवने धारण नहीं की। ऐसा कोई राजवैभव नहीं जो इस जीवको परिचित नहीं–इस जीवने भोगा नहीं। ऐसा कोई चेतन-अचेतन पदार्थ या क्षेत्र नहीं जो इस जीवको परिचित-अनुभूत नहीं है। ३६१. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ तीन लोकमें जितने दुःख हैं, पाप हैं और अशुचि वस्तुयें हैं, उन सबको लेकर इन मिले हुओंसे विधाताने वैर मानकर शरीर बनाया है। ३६२. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ जितना कुछ शरीरका राग है वह आत्माके हितमें अनिष्ट देखा गया है, ज्ञान विज्ञान जो आत्माको इष्ट है उनसे वियोग रहता है, अनिष्ट बातोंमें स्वभाव रंग जाता है, अनिष्टकी अनुमोदनासे दुर्गतिका लाभ होता है। ३६३. *(श्री उपदेश शुद्धसार)*

❀ इन्द्रियोंके विषयोंमें तृष्णा रखनेवालेको भीषण अन्तर्दाह होता देखनेमें आता है क्योंकि उस अन्तर्दाहके बिना उन जीवोंको विषयोंमें रति किस प्रकार हो सकेगी? ३६४. *(श्री पंचाध्यायी)*

❀ जैसे विषय-सेवनरूपी विष विषयलुब्ध जीवोंको विष-दुःख देनेवाला है वैसे ही घोर तीव्र स्थावर जंगम सब ही विष प्राणियोंको विनाश करते हैं तथापि इन सब विषोमें विषयोंका विष उत्कृष्ट है, तीव्र है। ३६५. *(श्री शीलपाहुड)*

❀ राग रहित चिद्रूप पूर्णानन्दका समुद्र आत्मामें ही सच्चा सुख है; संसारके इन्द्रिय-सुख तो उसके समक्ष जुगनू जैसे हैं, उनमें सुख मानना वह तो मात्र दुर्बुद्धिका विस्तार है। ३६६.

(श्री वचनामृत-शतक)

❀ शरीर, धन, सुख-दुःख अथवा शत्रु-मित्रजन—वे कोई जीवको ध्रुव नहीं हैं, ध्रुव तो उपयोगात्मक आत्मा है। ३६७.

(श्री प्रवचनसार)

❀ जो यह जवान स्त्री अपनी सुंदरतारूपी जलसे भरी हुई नदी के समान मालूम होती है यही वह स्त्री हजारों दुःखरूपी तरंगोंसे भरी हुई भयानक नर्ककी वैतरणी नदीके समान है। ३६८. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ विषयोंका सेवन करनेसे प्राणियोंको केवल रति ही उत्पन्न होती है, यदि वह रति सुख माना जावे तो विष्टा आदि अपवित्र वस्तुओंके खानेमें भी सुख मानना चाहिये। क्योंकि विषयी मनुष्य जिस प्रकार रतिको पाकर अर्थात् प्रसन्नतासे विषयोंका उपभोग करते हैं उसी प्रकार कुत्ता और शूकरोंका समूह भी तो प्रसन्नताके साथ विष्टा आदि अपवित्र वस्तुयें खाता है। ३६९. *(श्री आदिपुराण)*

❀ इस आत्माको जो यह पौद्गलिक प्राणोंकी संतानरूप प्रवृत्ति है, उसका अंतरंग हेतु अनादि पौद्गलिक कर्म जिसका मूल (–निमित्त) है ऐसा शरीरादिके ममत्वरूप उपरक्तपन (–विकारीपना) है। ३७०.

(श्री प्रवचनसार)

❀ शरीर संबंधी नाना प्रकार संकल्प विकल्प होते हैं, शरीरकी दृष्टि ही व शरीरकी अहंबुद्धिरूपी श्रद्धा ही अनिष्ट करनेवाली है, जिससे ज्ञानस्वभावी आत्माका दर्शन नहीं होता है। इससे ज्ञानावरण-कर्मका प्रचुर बंध होता है, तब दुःखकी संतान पड़ जाती है। ३७१.

(श्री उपदेश-शुद्धसार)

❀ सर्व कुटुंबादिक तब तक ही स्नेह करै हैं जब तक दानकारि उनका सन्मान करै हैं, जैसें श्वानके बालकको जब लग टुकड़ा डारिये तो लग अपना है। ३७२. *(श्री पद्मपुराण)*

www.vitragvani.com

❀ मैं अनादिकालसे आत्मस्वरूपसे च्युत होकर इन्द्रियों द्वारा विषयोंमें पतित हुआ, इसलिये उन विषयोंको प्राप्त करके वास्तवमें स्वयं अपनेको मैं वही हूँ—आत्मा हूँ ऐसा मैंने नहीं जाना। ३७३.

(श्री समाधितंत्र)

❀ मिथ्यात्वसे उत्पन्न जो मोह, उसकी अपेक्षा धतूरेसे उत्पन्न हुआ मोह अच्छा है। दर्शनमोह अनन्तानन्त जन्म-मरण बढ़ाता है, धतूरा अल्पकाल उन्मत्त करता है। मिथ्यादर्शन अनन्तानन्त भवपर्यंत जीवको अचेत कर-करके मारता है। इसलिये जन्म-मरणके दुःखसे भयभीत हो वह मिथ्यात्वका त्याग करता है। ३७४.

(श्री भगवती आराधना)

❀ प्रगट वस्तुको अप्रगट क्यों बनाते हो? प्रगट वस्तु अप्रगट नहीं हो सकती। पूर्व भूलसे प्रगट वस्तुको अप्रगट माना था (इसलिये) उसका अनादि दुःखरूप फल प्राप्त किया था, अब शरीरको आत्मा कैसे मानें? वह तो रक्तसे, वीर्यसे, सात धातुओंका बना हुआ, जड़, विजातीय, नाशवान तथा पर है। वह (शरीर) मेरी चेतना नहीं है। ३७५.

(श्री अनुभवप्रकाश)

❀ अविवेकी मानव स्त्रीके संसर्गको सुख कहते हैं किंतु विचार किया जावे तो यह ही दुःखोंके बडे भारी बीज हैं। ३७६.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ जैसे भूखा कुत्ता हड्डी चबाता है और उसकी नोक मुँहमें चारों ओर लगती है, जिससे गाल, तालु, जीभ और जड़वेका मांस फटनेके कारण खून निकलता है, उस निकले हुए अपने ही खूनको वह अत्यन्त स्वादपूर्वक चाँटता हुआ आनन्दित होता है। उसी प्रकार अज्ञानी विषयलोलुपी जीव काम-भोगमें आसक्त होकर संताप और कष्टमें भलाई

मानता है। कामक्रीड़ामें शक्तिकी हानि तथा मल-मूत्रकी खान साक्षात् दिखती है तथापि ग्लानि नहीं करता, राग–द्वेषमें ही मग्न रहता है। ३७७.

(श्री नाटक समयसार)

❀ एक ओर सम्यग्दर्शनका लाभ होता हो तथा दूसरी ओर तीनलोकका राज्य मिलता हो तब भी तीनलोकके लाभकी अपेक्षा सम्यग्दर्शनका लाभ श्रेष्ठ है, त्रिलोकका राज्य पाकर भी अमुक निश्चित काल पश्चात् वहाँसे पतन होगा ही और सम्यग्दर्शनका लाभ होनेपर अविनाशी मोक्षसुख प्राप्त होता है। इसलिये तीनलोकके लाभकी अपेक्षा सम्यक्त्वका लाभ श्रेष्ठ है। ३७८. *(श्री भगवती आराधना)*

❀ चैतन्यरूप एकत्वका ज्ञान दुर्लभ है, परन्तु मोक्षका देनेवाला वही है। यदि वह किसी भी प्रकार प्राप्त हो जाय तो उसका बारम्बार चिन्तवन करना चाहिये। ३७९. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ प्राणोंका नाशक विष खाना अच्छा, श्वापद (शिकारी प्राणी) सिंह आदि हिंसक पशुओंसे भरे हुए वनमें निवास करना अच्छा, तथा सुलगती हुई अग्निमें गिरकर प्राणोंका त्याग करना अच्छा; परन्तु मिथ्यात्वसहित इस संसारमें जीना अच्छा नहीं है। क्योंकि विष आदिके द्वारा प्राणोंका नाश होनेसे तो एक जन्ममें ही दुःख सहन करना पड़ता है, परन्तु मिथ्यात्वसे जन्म-जन्ममें प्रतिक्षण तीव्र यातनाओंका सामना करना पड़ता है। ३८०.

(श्री सुभाषित रत्नसंदोह)

❀ जो कोई भी मनुष्य विद्वान है वे भी काम व धनके स्नेहमें तत्पर रहते हुए इस संसारमें मोहित हो जाते हैं, यह मिथ्याभावकी महिमा है। यह बड़े खेदकी बात है। ३८१. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ प्राणियोंके जिस दोषको तीव्र मिथ्यात्वरूप शत्रु करता है उसे यहाँ न सिंह करता है, न सर्प करता है, न हाथी करता है, न राजा करता है और न अतिशय क्रोधको प्राप्त हुआ बलवान शत्रु भी करता

www.vitragvani.com

है। (तात्पर्य यह कि प्राणियोंका सबसे अधिक अहित करनेवाला एक यह मिथ्यात्व ही है।) ३८२. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ जैसे कोई मूर्ख मनुष्य सुवर्णके थालमें धूल भरता है, अमृत द्वारा अपने पैर धोता है, श्रेष्ठ हाथीसे ईंधन ढोनेका काम कराता है तथा कौएको उड़ानेके लिये अपने हाथका महामणि–चिन्तामणि रत्न फेंक देता है, वैसे ही अज्ञानी जीव इस दुर्लभ मनुष्यजन्मको व्यर्थ ही गँवा देता है। ३८३. *(श्री सुक्ति मुक्तावली)*

❀ जैसे कोई मनुष्य बहुमूल्य चन्दनको अग्नि हेतु जला देता है, वैसे ही अज्ञानी जीव निर्वाणका कारण जो मनुष्यभव उसे विषयोंकी वांछामें नष्ट करता है। ३८४. *(श्री भगवती आराधना)*

❀ दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त करके जो इन्द्रिय-विषयोंमें रमता है वह राखके लिये दिव्य अमूल्य रत्नको जलाता है। ३८५.

(श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)

❀ जैसे कोई मूर्ख मनुष्य राखके लिये अति मूल्यवान चन्दनको जला दे, वैसे ही अज्ञानी जीव विषयोंके लोभमें मनुष्यभवको नष्ट करता है।

जैसे कोई मूर्ख मनुष्य रत्नद्वीपमें जाकर भी वहाँके रत्नोंको छोड़कर लकड़ीका भार ले आये, वैसे ही मनुष्यभवरूपी रत्नद्वीपमें आकर भी अज्ञानी जीव धर्मरत्नोंको छोड़कर भोगोंकी अभिलाषा करता है।

जैसे नन्दनवनमें जाकर भी कोई मूर्ख मनुष्य अमृतको छोड़कर विष पिये, वैसे ही मनुष्यभवरूपी नन्दनवनमें आकर भी अज्ञानी जीव धर्म-अमृतको छोड़कर भोगकी अभिलाषारूप विषका पान करता है। ३८६.

(श्री भगवती आराधना)

❀ जैसे चिन्तामणि रत्न बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है वैसे ही

त्रसपर्याय बड़ी कठिनतासे प्राप्त होती है। (वहाँ भी) इल्ली, चींटी, भँवरा आदिके शरीर बारम्बार धारण कर-करके मरणको प्राप्त हुआ और अत्यन्त पीड़ा सहन की। ३८७. *(श्री छहढाला)*

❀ इस जगतमें अनन्त जीव ऐसे हैं कि जिनको द्वीन्द्रियादि शरीरकी प्राप्ति कभी नहीं हुई है। मिथ्यात्वादि भावकलंकसे भरे हुए जीव सर्वकाल निगोदवासको नहीं छोड़ते। सूक्ष्म वनस्पतिरूपमें रहनेवाले ऐसे अनन्त जीव हैं। (इस संसारमें जीवको त्रसपना प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।) ३८८.

(श्री मूलाचार)

❀ तिर्यंचसे निकलकर मनुष्यगति प्राप्त करना अति दुर्लभ है। जैसे चौराहे (चार मार्ग) पर रत्न गिर गया हो तो बड़े भाग्यसे ही हाथ आता है वैसे ही (मनुष्यपना) दुर्लभ है। तथा ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त करके भी जीव मिथ्यादृष्टि होकर पाप उत्पन्न करता है। ३८९.

(श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)

❀ नरभव कहीं सदा तो रहता नहीं है, साक्षात् मोक्षसाधन ज्ञानकला इस भवके बिना अन्य स्थानों पर तो उत्पन्न नहीं होती; इसलिये बारम्बार कहते हैं कि–निज बोधकलाके बल द्वारा निजस्वरूपमें रहो। निरन्तर यही यत्न करो। ऐसा बारम्बार कहना तो बालक भी नहीं कराता, तुम तो अनन्त ज्ञानके स्वामी होकर ऐसी भूल धरते हो यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। ३९०. *(श्री अनुभवप्रकाश)*

❀ इस संसारमें चौराशी लाख योनि उनके निवासमें ऐसा कोई प्रदेश नहीं है जिसमें इस जीवने द्रव्यलिंगी मुनि होकर भी भावरहित होता हुआ भ्रमण न किया हो। ३९१. *(श्री भावपाहुड)*

❀ इस संसारमें जैसे पाषाणको आधार हो तो वहाँ दीर्घकाल रहता है, किन्तु निराधार आकाशमें तो कदाचित् किंचित्मात्र काल रहता है,

www.vitragvani.com

परन्तु यह जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें तो दीर्घकाल तक रहता है, परन्तु अन्य पर्यायमें तो कदाचित् किंचित्मात्र काल रहता है। ३९२.

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

❀ यदि जिनवाणी समझनेवालेकी बुद्धि भी (कर्मोदयवश) नष्ट होकर वह अन्यथा आचरण करे, तो फिर जिसे शास्त्रका ज्ञान नहीं है उसे क्या दोष देना? अरे, कर्मोदयको धिक्कार हो, धिक्कार हो! क्योंकि उसके वश जीवको जिनदेवकी प्राप्ति भी अप्राप्तिके समान है। ३९३.

(श्री उपदेशरत्नमाला)

❀ यह जीव द्रव्यलिंगका धारक मुनिपना होते हुए भी जो तीनलोक प्रमाण सर्व स्थान हैं उनमें एक परमाणु-परिमाण एक प्रदेशमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है कि जहाँ जन्म-मरण न किया हो। ३९४.

(श्री भावपाहुड)

❀ देहधारियोंके वे सुख तथा दुःख केवल वासनामात्र ही होते हैं। तथा वे (सुख-दुःखरूप) भोग आपत्तिके समय रोगोंकी भाँति (प्राणियोंको) उद्वेलित (आकुलित) करते हैं। ३९५. (श्री इष्टोपदेश)

❀ अधिक क्या कहना?—स्वर्गसे च्युत होनेके पूर्व मिथ्यादृष्टि देवको जो तीव्र दुःख होता है वह नारकीको भी नहीं होता। ३९६.

(श्री महापुराण)

❀ हे जीव! तूने मोहके वश होकर जो दुःख है उसे सुखरूप मान लिया और जो सुख है उसे दुःख मान लिया, इसलिये तूने मोक्ष प्राप्त नहीं किया। ३९७. (श्री पाहुड दोहा)

❀ दीर्घकाल तक अतिचार रहित ज्ञान–दर्शन–चारित्रमें प्रवृत्ति करके भी कोई पुरुष मरण समयमें चार आराधनाका विनाश करके अनन्त

संसारी होता हुआ भगवानने देखा है, इसलिये मरण समयमें आराधना नहीं बिगड़े ऐसा यत्न करो। ३९८. (श्री भगवती आराधना)

❀ देखो परिणामोंकी विचित्रता! कि—कोई जीव तो ग्यारहवें गुणस्थानमें यथाख्यातचारित्र प्राप्त करके मिथ्यादृष्टि बनकर किंचित्न्यून अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक संसारमें भटकता है जब कि कोई जीव नित्यनिगोदमेंसे निकलकर मनुष्य होकर आठ वर्षकी आयुमें मिथ्यात्वसे छूटकर अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त करता है—ऐसा जानकर अपने परिणाम बिगड़नेका भय रखना तथा उन्हें सुधारनेका उपाय करना। ३९९. (श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

❀ जिस प्रकार पवनके लगनेसे अग्नि प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार बारह भावनाओंका चिन्तवन करनेसे समतारूपी सुख प्रगट होता है। जब जीव आत्मस्वरूपको जानता है तब ही जीव मोक्षसुखको प्राप्त करता है। ४००. (श्री छहढाला)

❀ देह क्षीण होनेके समय मति-श्रुतकी धारणा आदि सब क्षीण होने लगते हैं; हे वत्स! ऐसे अवसरमें अंतरके देवका तो कोई विरले ही स्मरण करते हैं। ४०१. (श्री पाहुड-दोहा)

❀ अनन्त संसारमें परिभ्रमण करता हुआ ऐसा मैं अब उस अनादि परिभ्रमणके आत्यंतिक अभावके अर्थ पूर्वमें जिनको कभी भी नहीं भाया, जिनका कभी चिन्तवन नहीं किया तथा कभी जिनकी प्रतीति नहीं की—ऐसी सम्यग्दर्शनादि निर्मल भावनाओंको भाऊँ, आराधूँ तथा पूर्वमें अनन्तबार भायी हुई ऐसी मिथ्यादर्शनादिक दुर्भावनाओंका त्याग करूँ। ४०२. (श्री आत्मानुशासन)

❀ हे भव्यात्मा! तू जीवको शरीरसे सर्वप्रकार भिन्न, उद्यम करके भी जान! जिसे जानने पर शेष सभी परद्रव्य क्षणमात्रमें छोड़ने योग्य लगते हैं। ४०३. (श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)

www.vitragvani.com

❀ कोई कहे कि संसार अनन्त है वह कैसे मिटे? उसका समाधान—बन्दरका फँसना इतनी ही है कि मुट्ठी नहीं छोड़ता, तोतेका फँसना इतना ही है कि नलिनीको नहीं छोड़ता, कुत्तेका फँसना इतना ही है कि वह भोंकता है। कोई तीन मोड़वाली रस्सीमें सर्प मानता है वहाँ तक ही उसको भय है। मृग, मृग-मरिचिकामें जल मानकर दौड़ता है, इसीसे दुःखी है। उसी प्रकार आत्मा परको अपनेरूप मानता है इतनी ही संसार है, नहीं माने तो मुक्त ही है। ४०४.

(श्री चिद्विलास)

❀ इस संसारमें सद्विचाररूप बुद्धि होना परम दुर्लभ है। उसमें भी परलोक हितार्थकी बुद्धि होना तो अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसी बुद्धि प्राप्त होनेपर भी जो जीव प्रमादी हो रहे हैं उन्हें देखकर ज्ञानी पुरुषोंको भी शोक और दया उत्पन्न होते हैं। ४०५.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ संसारका सब ठाठ क्षणभंगुर है, ऐसा जानकर पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें मोह नहीं करना। विषयका राग सर्वथा त्यागना योग्य है। प्रथम अवस्थामें यद्यपि धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिका निमित्त जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म तथा जैनधर्मी इनमें प्रेम करना योग्य है, तो भी शुद्धात्माकी भावनाके समय यह धर्मानुराग भी नीचे दरजेका गिना जाता है, वहाँ पर केवल वीतरागभाव ही है। ४०६. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ इस मनुष्यजन्मका फल धर्मकी प्राप्ति है। वह निर्मल धर्म यदि मेरे पास है तो फिर मुझे आपत्तियोंकी भी क्या चिन्ता है तथा मृत्युका भी क्या डर है? अर्थात् वह धर्म होनेसे न तो आपत्तियोंकी चिन्ता रहती है और न तो मरणका भय रहता है। ४०७.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ जिस तरह मन विषयोंमें रमण करता है, उस तरह यदि वह आत्माको जाननेमें रमण करे, तो हे योगिजनो ! योगी कहते हैं कि जीव शीघ्र ही निर्वाण पा जाय। ४०८. *(श्री योगसार)*

❀ हे चित्त तूने बाह्य स्त्री आदि पदार्थोंमें जो सुख देखा है उसमें तुझे भ्रान्तिवश चिरकालतक अनुराग हुआ है, तथापि तू उससे अधिक संतप्त हो रहा है। इसलिये उसे छोड़कर अपने अंतरात्मामें प्रवेश कर। उसके विषयमें सम्यग्ज्ञानके आधारभूत गुरुके पास ऐसा कुछ श्रवण करनेमें आता है कि जो प्राप्त होनेपर समस्त दुःखोंसे छूटकारा पाकर अविनश्वर (मोक्ष) सुख प्राप्त किया जा सकता है। ४०९.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ जिनसे अनादि मिथ्यात्व रोग मिट जाय ऐसे निमित्तोंका प्राप्त होना तो उत्तरोत्तर महा दुर्लभ जानकर इस (हलके) निष्कृष्टकालमें जैनधर्मका यथार्थ श्रद्धानादि होना तो कठिन है ही, परन्तु तत्त्वनिर्णयरूप धर्म तो बाल, वृद्ध, रोगी, निरोगी, धनवान, निर्धन, सुक्षेत्री तथा कुक्षेत्री इत्यादि सर्व अवस्थाओंमें प्राप्त होने योग्य है, इसलिये जो पुरुष अपने हितका वांछक है उसे तो सबसे पहले यह तत्त्वनिर्णयरूप कार्य करना ही योग्य है। ४१०. *(श्री सत्तास्वरूप)*

❀ जो जीव मनुष्यपर्यायमें उत्तमकुलमें जन्म लेकर कष्टपूर्वक बुद्धिचातुर्यको प्राप्त हुए हैं तथा जिन्होंने पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मके उदयसे किसी भी प्रकारसे जैनमतमें भक्ति भी प्राप्त कर ली है, तथापि यदि वे संसार-समुद्रसे पार उतारकर सुख देनेवाला धर्म नहीं करते तो समझना चाहिये कि वे दुर्बुद्धिजन हाथमें आये हुए अमूल्य रत्नको छोड़ देते हैं। ४११. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ जो कोई अर्ध क्षण भी परमात्मासे प्रीति करता है वह सब पापको उसी तरह जला देता है जैसै काठके पर्वतको आग भस्म कर

www.vitragvani.com

देती है। हे जीव ! सर्व चिंता छोड़कर तू निश्चिंत होकर अपने चित्तको परमात्माके पदमें जोड़ और निरंजन शुद्ध आत्मारूपी देवका दर्शन कर। ध्यान करते हुए शुद्धात्माके दर्शन या अनुभवसे जो परमानंद हे भाई ! तू पावेगा वह अनंत सुख परमात्मा-देवको छोड़कर और कहीं तीनलोकमें नहीं मिल सकता है। ४१२. *(श्री ममलपाहुड)*

❀ हे आत्मन् ! तू आत्माके प्रयोजनका आश्रय कर अर्थात् और प्रयोजनोंको छोड़कर केवल आत्माके प्रयोजनका ही आश्रय कर, तथा मोहरूपी वनको छोड़, विवेक अर्थात् भेदज्ञानको मित्र बना। संसार और देहके भोगोंसे वैराग्यका सेवन कर और परमार्थसे जो शरीर और आत्मामें भेद है उसका निश्चयसे चिंतवन कर, और धर्मध्यानरूपी अमृतके समुद्रके मध्यमें परम अवगाहन (स्नान) करके अनंत सुख स्वभाव सहित मुक्तिके मुखकमलको देख। ४१३. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ मोहसे यह संसार-भ्रमण है। वहाँसे वह किंचित् भी स्वरूपमें आये तो तीनलोकका राज्य प्राप्त करले और वह दुर्लभ भी नहीं है। जैसे मनुष्य पशुका स्वांग धारण करे उससे वह कहीं पशु नहीं हो जाता परन्तु मनुष्य ही रहता है। वैसे ही आत्मा चौरासीके स्वांग बनाये तथापि वह चिदानन्द ही है। चिदानन्दपना दुर्लभ नहीं है। ४१४.

(श्री अनुभवप्रकाश)

❀ ऐसा जानो कि 'मोह मेरा कुछ भी सम्बन्धी नहीं है, एक उपयोग है वही मैं हूँ'—ऐसा जो जानना उसे सिद्धान्तके अथवा स्व-परके स्वरूपके ज्ञाता मोहसे निर्ममत्व जानते हैं, कहते हैं। ४१५.

(श्री समयसार)

❀ अपनेसे भिन्न देह रागादिकोंसे तुझे क्या प्रयोजन है? देहमें रहता हुआ भी निश्चयसे देहस्वरूप जो नहीं होता, वही निज शुद्धात्मा उपादेय है। ४१६. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ मैं एक चैतन्यमयी हूँ, और कुछ अन्यरूप कभी नहीं होता हूँ। मेरा किसी भी पदार्थसे कोई संबंध नहीं है यह मेरा पक्ष परम मजबूत ऐसा ही है। ४१७. *(श्री पद्मनंदिपंचविंशति)*

❀ पं. बनारसीदासजी कहते हैं—हे भाई भव्य! मेरा उपदेश सुनो कि किसी भी उपायसे तथा किसी भी प्रकारका बनकर ऐसा काम कर जिससे मात्र अंतर्मुहूर्तके लिये मिथ्यात्वका उदय न रहे, ज्ञानका अंश जाग्रत हो, आत्मस्वरूपकी पहिचान हो जाय।' जीवनभर उसीका विचार, उसीका ध्यान, उसीकी लीलामें परमरसका पान करो और राग-द्वेषमय संसारका परिभ्रमण छोड़कर तथा मोहका नाश करके सिद्धपद प्राप्त करो! ४१८. *(श्री नाटक समयसार)*

❀ चौरासीमें परवस्तुको अपनी मानता है, इसलिये यह जीव चिरकालका चोर बना है, जन्मादि दुःखदण्ड पाता है, तथापि परवस्तुकी चोरी नहीं छूटती। देखो! तीनलोकका नाथ भूलकर नीच परके आधीन हुआ अपनी निधिको नहीं पहिचाना, भिखारी बनकर फिरता है। निधिचेतना है वह स्वयं ही है, दूर नहीं है। देखना दुर्लभ है, देखे तो सुलभ है। ४१९. *(श्री अनुभवप्रकाश)*

❀ जिनेश्वरके आगममें जिसकी बुद्धि अनुरक्त हुई है तथा संसारसे जन्म-जरा-मरणादि महाभय उत्पन्न होता है ऐसा जो मनमें चिन्तवन करते हैं इसलिये जिन्हें संसारका भय उत्पन्न हुआ है ऐसे मुनियोंका गर्भवाससे अत्यन्त भय लगता है। ४२०. *(श्री मूलाचार)*

❀ जो इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छाओंका दमन करनेवाला आत्मा शरीरमें यात्रिके समान प्रस्थान करते हुए अपने आत्माको अविनाशी समझता है वही इस भयानक संसाररूपी समुद्रको गायके खुरके समान लीलामात्रमें पार करके शीघ्र ही मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्राप्त कर लेता है। ४२१. *(श्री तत्त्वभावना)*

www.vitragvani.com

❀ हे मित्र! यदि तुम यहाँ सौभाग्यकी इच्छा रखते हो, सुन्दर स्त्रीकी इच्छा रखते हो, पुत्रोंकी इच्छा रखते हो, लक्ष्मीकी इच्छा रखते हो, महलकी इच्छा रखते हो, सुखकी इच्छा करते हो, सुन्दररूपकी इच्छा करते हो, प्रीतिकी इच्छा करते हो अथवा यदि अनन्त सुखरूप अमृतके सागर समान उत्तम स्थान (मोक्ष)की इच्छा रखते हो तो निश्चयसे समस्त दुःखदायक आपत्तियोंका नाश करनेवाले धर्ममें अपनी बुद्धिको लगाओ। ४२२. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ जिसका चिन्तवन करनेसे, ध्यान करनेसे ऋषिगण परम पदको प्राप्त करते हैं, जिसकी स्तुति इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र तथा गणधरदेव सर्वमदको त्यागकर करते हैं, वेद–पुराण जिसको बतलाते हैं, यमराजके दुःखके प्रवाहको जो हरती है—ऐसी जिनवाणी, उसे हे भव्य जीवो! द्यानतरायजी कहते हैं कि तुम अनेक विकल्परूप नदीका त्याग करके अपने हृदयमें नित्य धारण करो! ४२३. *(श्री द्यानत-विलास)*

❀ अपनेको भयरहित औषधिदान यह है कि बाधासे रहित स्वभाव हो जावे अर्थात् आर्त्तध्यान व रौद्रध्यानसे रहित निराकुल धर्मध्यानमयी स्वभावका प्रकाश हो जावे। ऐसा वैराग्यभाव प्रगट हो जावे कि संसार, शरीर व भोगोंकी ओरसे चिंतारूपी बाधा विला जावे, न चारगतिरूप दुःखमयी संसारकी कामना रहे, न नाशवंत शरीरकी प्राप्तिकी इच्छा रहे, न अतृप्तकारी भोगोंकी चाहना रहे, इन सबकी चाहकी दाहका मिटना सोई अपनेको औषधिदान करना है। ४२४. *(श्री ममलपाहुड)*

❀ निर्ममताका चिंतवन करनेमें क्लेश नहीं होता, परकी याचना नहीं करना पड़ती, किसीकी खुशामद नहीं करना पड़ती, कोई चिन्ता नहीं होती, तथा कोई धनादि खर्च नहीं करना पड़ता। इसलिये निर्ममत्व भावका सतत चिन्तवन करना चाहिये। ४२५. *(श्री तत्त्वज्ञान-तरंगिणी)*

❀ ममतारहित होना परम तत्त्व है, ममतारहित होना परमसुख है,

ममतारहित भाव मोक्षका श्रेष्ठ बीज है ऐसा बुद्धिमानोंने कहा है। ४२६.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ यदि शरीरके साथ सम्बन्ध हो तो दुःख अथवा मृत्यु उपस्थित होनेपर विद्वान पुरुषोंको शोक नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह शरीर इन दोनों (दुःख एवं मृत्यु)की जन्मभूमि है अर्थात् इन दोनोंका शरीरके साथ अविनाभाव है। इसीलिये निरन्तर उस आत्मस्वरूपका विचार करना चाहिये जिसके द्वारा भविष्यमें प्रायः (सम्भवतः) सांसारिक दुःख देनेवाले इस शरीरकी उत्पत्तिकी पुनः सम्भावना ही न रहे। ४२७.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ रोगसे पीड़ित, लकड़ी, मुष्टि आदि द्वारा प्रहार किया हुआ, रस्सी आदिसे बँधा हुआ, अपने आत्माका स्मरण करते हुए दुःखी नहीं होता। अपने आत्माके चिन्तनसे क्षुधा द्वारा, शीत द्वारा, पवन द्वारा, तृषा द्वारा, ताप द्वारा दुःखी नहीं होता। ४२८. *(श्री तत्त्वज्ञान-तरंगिणी)*

❀ कर्मरूपी शत्रुओंको पकड़नेकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमानोंको संसार-भोग और शरीरमें वैराग्य बड़ी बुद्धिमानीके साथ सदा भावना योग्य है। ४२९. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ जैसे बन्दर एक कंकड़के लगनेसे रोने लग जाता है वैसे ही यह भी एक अंग अशक्त हो जाय तो वहाँ बहुत रोता है—'यह मेरा और मैं इसका,' इस प्रकार जूठ ही ऐसे जड़ोंकी सेवासे सुख मानता है। अपनी शिवनगरीके राज्यको भूल रहा है; यदि श्रीगुरुके कहनेसे शिवपुरीको सम्हाले तो वहाँका स्वयं चेतनराजा अविनाशी राज्य करे। वहाँ चेतना वस्ती है, तीनलोकमें जयजयकार हो, भवमें नहीं भटके, पुनः जड़में न आये। आनन्दघनको प्राप्त करके सदैव शाश्वतसुखका भोक्ता हो ऐसा करो। ४३०. *(श्री अनुभवप्रकाश)*

www.vitragvani.com

❀ कोई निन्दा करता है तो निन्दा करो, स्तुति करता है तो स्तुति करो, लक्ष्मी आओ या जाओ, तथा मरण आज ही होओ या युगान्तरमें होओ। परन्तु नीतिमें निपुण पुरुष न्यायमार्गसे एक डग भी डिगते नहीं हैं। ऐसे न्यायका विचार करके, निन्दा-प्रशंसादिके भयसे अथवा लोभादिकसे भी अन्यायरूप मिथ्याप्रवृत्ति करना योग्य नहीं है। अहो! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है, उसके आधारसे तो धर्म है, उसमें शिथिलता रखे तो अन्य धर्म किस प्रकार हो? ४३१.

(श्री मोक्षमार्गप्रकाशक)

❀ हे योगी! तू जो वीतराग परमानंदके शत्रु ऐसे नरकादि चारों गतियोंके दुःख उनसे डर गया है तो तू निश्चिंत होकर परलोकका साधन कर! इस लोककी कुछ भी चिंता मत कर। क्योंकि तिलके भूसे मात्र भी शल्य मनको निश्चयसे वेदना करती है। ४३२.

(श्री परमात्मप्रकाश)

❀ हे जीव! जैसे नरकवास सैकड़ों छिद्रोंसे जर्जरित हैं, उसी तरह शरीरको भी (मलमूत्र आदिसे) जर्जरित समझ। अतएव निर्मल आत्माकी भावना कर तो शीघ्र ही संसारसे पार होगा। ४३३.

(श्री योगसार)

❀ शुद्ध चिद्रूपको भेजनेवाले मनुष्योंका क्षुधा, तृषा, रोग अथवा शीत, उष्ण, पानी तथा वाणीसे, शस्त्र, राजादिके भयसे, स्त्री, पुत्र, शत्रु, निर्धनता, अग्नि, बेड़ी, गाय, आदि पशु तथा अश्व, धन, कंटकसे, संयोग, वियोग, डाँस, पतन, धूलसे, मानभंग आदिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख कहाँ चला जाता है वह हम नहीं जानते। ४३४.

(श्री तत्त्वज्ञान-तरंगिणी)

❀ आचार्य महाराज उत्प्रेक्षा करते हैं कि ब्रह्माने जो स्त्रियें बनाई

हैं वे मनुष्योंके बेधनेके लिये शूली, काटनेके लिये तरवार, कतरनेके लिये दृढ करोत (आरा) अथवा पेलनेके लिये मानो यंत्र ही बनाये है। ४३५.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ जो मनुष्य अगणित गुणरत्नोंसे शोभायमान सुन्दर आत्मतत्त्वके चिन्तनमें सदैव रत है, उसकी बराबरी करनेवाला संसारमें कौन है?— क्या मिट्टीका दीपक सूर्यकी बराबरी कर सकता है? ४३६.

(श्री नेमीश्वर-वचनामृत-शतक)

❀ संसारी जीवराशि मिथ्यात्व परिणामको सर्वथा छोड़ो। छोड़नेका अवसर कौन-सा? तत्काल। भावार्थ ऐसा है कि शरीरादि परद्रव्योंके साथ जीवकी एकत्वबुद्धि विद्यमान है, वह सूक्ष्मकालमात्र भी आदर करने योग्य नहीं है। ४३७. (श्री कलश-टीका)

❀ इस शरीरके रोग-सड़न-पड़न-जरा तथा मरणरूप स्वभावको देखकर जो भव्य जीव आत्माको ध्याते हैं वे (औदारिकादि) पाँच प्रकारके शरीरोंसे मुक्त हो जाते हैं। ४३८. (श्री तत्त्वसार)

❀ हे योगी! यह शरीर छिद जावे, दो टुकडे हो जावे, अथवा भिद जावे, छेदसहित हो जावे, नाशको प्राप्त होवे, तो भी तू भय मत कर, मनमें खेद मत ला, अपने निर्मल आत्माका ही ध्यान कर, अर्थात् वीतराग चिदानंद शुद्धस्वभाव-भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मसे रहित अपने आत्माका चिंतवन कर कि जिस परमात्माके ध्यानसे तू भवसागरका पार पायगा। ४३९. (श्री परमात्मप्रकाश)

❀ यह अज्ञानी प्राणी मृत्यु द्वारा खण्डित किये जाने पर आयुके दिवसोंरूपी दीर्घ टुकड़ोंको सदा अपने समक्ष गिरते हुए देखने पर भी अपनेको स्थिर मानता है। ४४०. (श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ हे मंदबुद्धि! इस शरीरने जो-जो वस्तुऐं आपसे चाही, तुमने

www.vitragvani.com

वही-वही शरीरके लिए पुष्टकारी वस्तुऐं दी; तब भी शरीर तुम्हारे साथ नहीं जाता है, तब मित्रादिक कैसे जायेंगे ? तुम्हारा पुण्य और पाप दोनों ही तुम्हारे पीछे आते हैं। इसलिये शरीरादिकमें तुम किंचित् भी मोह मत करो। ४४१. *(श्री सज्जन चित्त वल्लभ)*

❀ अरेरे! संसारमें भटकते हुए जीवको न तो संत दिखते हैं और न तत्त्व दिखता है; परकी रक्षाका भार कन्धे पर लिये फिरता है! इन्द्रियाँ तथा मनरूपी फौजको साथ लेकर परकी रक्षाके लिये भटकता रहता है। ४४२. *(श्री पाहुड-दोहा)*

❀ जैसे दृढ़ नौकामें बैठे हुए मनुष्यको विस्तीर्ण नदीमें जल बढ़ने पर भी यात्रा करनेमें डर नहीं लगता, वैसे ही जो पुरुष शरीरके क्षणिक तथा अपवित्र स्वभावको यथावत् समझा है, तथा वास्तविक आत्मशान्तिका किसी अंशमें अनुभव हुआ है, उस पुरुषको रोगादिकी वृद्धिमें भी खेद प्राप्त नहीं होता। ४४३. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ ज्ञानी पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं सदैव अकेला हूँ, अपने ज्ञान-दर्शनसे परिपूर्ण अपने ही आधारसे हूँ, भ्रमजालका कूप मोहकर्म मेरा स्वरूप नहीं है! नहीं है!! मेरा स्वरूप तो शुद्ध चैतन्यसिन्धु है। ४४४. *(श्री नाटक समयसार)*

❀ देहधारी तू दूसरेके मरणको न गिनते हुए अपना सदा अमरत्व विचारता है; इन्द्रियरूपी हाथीके वशमें होकर घूमता है; निश्चितरूपमें यम आज आयेगा या कल आयेगा ऐसा पता नहीं है–इसलिये आत्महितकारी जिनेन्द्रकथित धर्मको तू शीघ्र कर। ४४५. *(श्री सज्जन चित्त वल्लाभ)*

❀ जिस समय तपस्वी अंतरात्माको मोहवशात् राग और द्वेष उत्पन्न हों उसी समय उस तपस्वीको शुद्धात्मस्वरूपकी भावना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे राग-द्वेषादि क्षणमात्रमें शान्त हो जाते हैं। ४४६. *(श्री समाधितंत्र)*

❀ संसार, शरीर और भोगोंसे जिसका मन विरक्त हुआ है उस जीव द्वारा आत्माको ध्यानेसे, उसकी महा विस्तृत संसाररूपी बेल छिन्न भिन्न हो जाती है। ४४७. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ छ खंडका स्वामी चक्रवर्ती सम्राट भी इस पृथ्वीको और सर्व भोग्य पदार्थोंको तृणके समान निःसार जानकर छोड़ देता है। और निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिकी दीक्षा धारण कर लेता है। ४४८. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ जो विषयसे विरक्त है वह जीव नरकमें तीव्र वेदना है उसे भी गँवाता है, वहाँ भी अति दुःखी नहीं होता। इसलिये वहाँसे निकलकर तीर्थंकर होता है। ऐसा जिनेन्द्र वर्द्धमानभगवानने कहा है। ४४९. *(श्री शीलपाहुड)*

❀ अरे! इस शरीरको देखकर अब भी शरीररूप घरसे वैराग्य नहीं है! कैसे शरीरसे ?–रक्तवीर्यसे बने हड्डी, मांस, मज्जादिसे भरे, बाहरसे सर्व तरफसे मक्खीके परोंके समान चमड़ीसे ढ़का हुआ है; नहीं तो काक, बगुलादिक पक्षियोंके द्वारा यह शरीर खा लिया जाता। ४५०. *(श्री सज्जन चित्त वल्लभ)*

❀ ज्ञानी अपनेमें और परद्रव्यमें सर्वथा कुछ भी सम्बन्ध नहीं देखता। इसलिये यह पुद्गलका नाटक जैसा जाननेमें आया तदनुसार नाचता है, स्वयं उपजता है, विनशता है, स्वयं आता है, स्वयं जाता है, मैं उसके नाटकको न रख सकता हूँ और न छोड़ सकता हूँ। ''उसके नाटकको रखने या छोड़नेकी चिन्ता की जाय वह भी झूठी है, क्योंकि वह परवस्तु है। अपने गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, कर्ता-कर्म-क्रियादिकी सामग्रीसे स्वाधीन है।'' ४५१. *(श्री आत्मावलोकन)*

❀ जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर तथा भ्रमर एक

www.vitragvani.com

फूलसे दूसरे फूल पर जाता है उसी प्रकार यहाँ संसारमें जीव निरन्तर एक पर्यायसे दूसरी पर्यायमें जाता है, इसलिये बुद्धिमान मनुष्य उपरोक्त प्रकारसे प्राणियोंकी अस्थिरता जानकर सम्भवतः किसी इष्ट सम्बन्धीका जन्म होनेपर हर्षित नहीं होता और उसकी मृत्यु होनेपर शोकसंतप्त भी नहीं होता। ४५२. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ भावमोह अपवित्र, आत्माके गुणोंका घात करनेवाला, रौद्ररूप, दुःख एवं दुःखरूप फलको देनेवाला है, उस भावमोहके विषयमें अधिक कहाँ तक कहें? मात्र वह भावमोह ही सम्पूर्ण विपत्तियोंका स्थान है। ४५३. *(श्री पंचाध्यायी)*

❀ जो जीव अपने स्वरूपसे देहको परमार्थतः भिन्न जानकर आत्मस्वरूपका सेवन करता है—ध्याता है उसे अन्यत्व भावना कार्यकारी है। ४५४. *(श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)*

❀ हे योगी ! जो तू चिन्ताओंको छोड़ेगा तो संसारका भ्रमण छूट जायेगा, क्योंकि चिंतामें लगे हुए छद्मस्थ अवस्थावाले तीर्थंकरदेव भी परमात्माका आचरणरूप शुद्धभावोंको नहीं पाते। ४५५.

(श्री परमात्मप्रकाश)

❀ गुरुचरणोंके समर्चनसे उत्पन्न हुए निज महिमाको जानता हुआ कौन विद्वान् 'यह पर द्रव्य मेरा है' ऐसा कहेगा? ४५६.

(श्री नियमसार-टीका)

❀ यद्यपि इस लोकमें मृत्यु है सो जगतको आतापका करनेवाला है, तब भी सम्यग्ज्ञानीके अमृतसंग जो निर्वाण उसके अर्थ है। जैसे कच्चे घड़ेको अग्निमें पकाना है सो अमृतरूप जलके धारण हेतु है। यदि कच्चा घड़ा अग्निमें नहीं पके तो घड़ेमें जलधारण नहीं होगा, अग्निमें एकबार पक जाय तो बहुत काल तक जलके संसर्गको प्राप्त होता है। वैसे ही

मृत्युके अवसरमें आताप समभावोंसे सहन कर ले तो निर्वाणका पात्र हो जाय। ४५७. *(श्री मृत्यु-महोत्सव)*

❀ हे महाशय ! हे मुने ! तूने पूर्वोक्त सब रोगोंको पूर्वभवोंमें तो परवश सहे, इस प्रकार ही फिर सहेगा; बहुत कहनेसे क्या? भावार्थ–यह जीव पराधीन होकर सब दुःख सहता है। यदि ज्ञानभावना करे और दुःख आने पर उससे चलायमान न हो इस तरह स्ववश होकर सहे तो कर्मका नाश कर मुक्त हो जावे, इस प्रकार जानना चाहिये। ४५८.

(श्री भावपाहुड)

❀ यह शरीर दुर्गंध युक्त एवम् मल नव द्वारोंसे निरंतर बहता रहता है उसको देखकर भी जिसके मनमें यदि वैराग्य नहीं है तो अरे! उसको पृथ्वी पर अन्य कौनसी वस्तु वैराग्यका कारण होगी कहो? कश्मीर-चंदनादिकसे सजाई गई यह देह ही दुर्गंधताको स्पष्ट करती है। ४५९.

(श्री सज्जन चित्त वल्लाभ)

❀ जो कोई अपने आत्माके हितका काम छोड़कर, चित्तमें ममताभावमें लीन होकर, दूसरोंके कार्योंमें ही रत हो जाता है वह अपने आत्महितको नाश कर देगा। ४६०. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ पुण्यसे घरमें धन होता है, और धनसे अभिमान, मानसे बुद्धिभ्रम होता है। बुद्धिके भ्रम होनेसे (अविवेकसे) पाप होता है, इसलिये ऐसा पुण्य हमारे न होवे। ४६१. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ (जीवको) तत्काल मरणका भास हो तब भी वह मरणको न गिनकर विषयोंका ग्रहण करता है। इसलिये मरण होनेकी अपेक्षा भी इन्द्रिय-विषयोंकी पीड़ा अधिक लगती है। उस इन्द्रियोंकी पीड़ासे सर्व जीव पीड़ित बनकर निर्विचार होकर जैसे कोई दुःखी मनुष्य पहाड़के ऊपरसे गिरता है वैसे ही, विषयोंमें झंपापात करता है। ४६२.

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

www.vitragvani.com

❀ रुद्र (महादेव)के कण्ठमें कालकूट विष रहता है, वह विष महादेवजी पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका! कालकूटको पचा सके ऐसे महादेवजी भी स्त्रियोंकी मायामें फँसकर योगक्षेम हार गये। इससे निश्चय होता है कि स्त्री ही सर्व विषम विषोंसे भयंकर विष है। ४६३.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ विषयोंके लम्पटी मूर्ख लोगोंने इस मनुष्यजन्मको, जिससे स्वर्ग तथा मोक्षकी सिद्धि की जा सकती है, अल्प इन्द्रिय सुखके अर्थ खोकर अपनेको तिर्यंचगति व नरकगतिमें जानेके योग्य कर लिया। ४६४.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ यह जीव भोगोंके निमित्त तो बहुत अल्प पाप करता है परन्तु तंदुल मत्स्यकी भाँति प्रयोजन बिना ही अपने दुर्विचारोंसे घोर पाप करता है। ४६५. (श्री जयसेन-आचार्य)

❀ यह बेचारा मनुष्यरूपी मछलियोंका समूह संसाररूपी सरोवरमें अपने सुखरूप जलमें क्रीड़ा करता हुआ मृत्युरूपी माछीमारके द्वारा फैलाये गये वृद्धत्वरूपी विस्तृत जालमें फँसकर निकटवर्ती तीव्र आपत्तियोंके समूहको भी नहीं देखता। ४६६. (श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ हे आत्मन् ! तू जिस प्रकार कामके बाणोंसे पीड़ित होकर स्त्रीके संयोगसे प्राप्त होनेवाले सुखके विषयमें अपने चित्तको करता है उसी प्रकार यदि मुक्तिके कारणभूत जिनेन्द्रके द्वारा उपदिष्ट मतके विषयमें उस चित्तको करता तो जन्म, जरा और मरणके दुःखसे छूटकर किस किस सुखको न प्राप्त होता—सब प्रकारके सुखको पा लेता। ऐसा उत्तम स्थिर बुद्धिसे विचार करके उक्त जिनेन्द्रके मतमें चित्तको स्थिर कर। ४६७.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ जैसे मोहसे उन्मत्त मन कंचन और कामिनीमें रमता है वैसे ही

यदि अपने शुद्ध आत्मामें रमण करे तो मोक्ष शीघ्र ही समीप क्यों न आये? मुक्ति समीपवर्ती क्यों न हो? ४६८. (श्री तत्त्वज्ञान-तरंगिणी)

❀ यदि परमतत्त्वके प्रेममें मोहित हो तो यह ज्ञानी इस मोहकी सहायतासे शास्त्रज्ञानमें व गुरु द्वारा प्रगट ज्ञानमें व ज्ञानके साधनोंमें आनंद मानता है। परंतु यदि शरीरके रागमें मूढ हो जावे तो अनंतानंत काल तक पुद्‌गल स्वभावमें ही रतिको प्राप्त हो इतना भ्रमण करे। ४६९.

(श्री उपदेश शुद्धसार)

❀ जिन देशादिके निमित्तसे सम्यग्दर्शन मलिन होता हो और व्रतोंका नाश होता हो ऐसे उन देशों, उन मनुष्यों, वह द्रव्य तथा उन क्रियाओंका भी परित्याग कर देना चाहिये। ४७०.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ इस संसारका तमाशा तो देखो!—कि जिसमें अनुनय-विनयसे माँगने पर एक पत्ता भी नहीं मिलता और अज्ञानी कष्टसे पेट भरता है; परन्तु यदि अज्ञान छोड़कर उस संसारसे विमुख हो जाओ तो बिना माँगे अपने सद्‌गुणोंकी वृद्धि होती है। ४७१.

(श्री नेमिश्वर-वचनामृत-शतक)

❀ संक्लेशरहित शांतचित्त, महान पुरुषोंका उत्तम धन है जिसके द्वारा जरा-मरणसे रहित स्थान प्राप्त होता है। ४७२. (सारसमुच्चय)

❀ जिन महापुरुषोंके चरणोंकी रजसे यह जगत पवित्र हो जाता है वे भी प्रायः स्त्रियोंके किये हुए कटाक्षोंके देखनेसे वंचित हो गये हैं ऐसे महापुरुषोंकी कथा जगतमें शास्त्रोंमें बहुत है। ४७३. (श्री ज्ञानार्णव)

❀ भेदज्ञानीके चित्तमें शुद्ध आत्मदर्शनरहित यह सर्व जगत उन्मत्त, भ्रान्तियुक्त दोनों नेत्र रहित, दिशा भूला हुआ, गाढ़ निद्रामें सुषुप्त, अविचारी, मूर्च्छित, जलके प्रवाहमें बहता हुआ, बालक समान अज्ञानावस्था

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सहित तथा मोहरूपी ठगोंसे पीड़ित दशाको प्राप्त, पागल जैसा तथा मोह ठगोंने अपने आधीन किया हुआ व्याकुल हुआ ज्ञात होता है। ४७४.

(श्री तत्त्वज्ञान-तरंगिणी)

❀ यह संसाररूपी वन सर्वत्र उत्पन्न हुए शोकरूपी दावानल (वनकी अग्नि)से व्याप्त है। उसमें मूढ़ मनुष्यरूपी हिरन स्त्रीरूपी हिरनीमें आसक्त होकर रहता है। निर्दयकाल (मृत्यु)रूपी व्याघ्र (शिकारी) सन्मुख आये हुए इन मनुष्यरूपी हिरनोंका सदा नाश करता रहता है। उससे न कोई बालक बचता है, न कोई युवक बचता है और नहीं कोई वृद्ध भी जीवित रहता है। ४७५. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ हे जीव! जहाँ दुष्कृत्यका वास है उसे तू गृहवास न समझ। यह तो निश्चयसे यमका फैलाया हुआ फंदा है इसमें शंका नहीं है। ४७६. *(श्री पाहुड-दोहा)*

❀ यह जीव नीच योनियोंमें दीर्घकाल तक अनेक तरहसे जब भ्रमण कर चुकता है तब कहीं पुण्यके योगसे एक बार उच्च योनिमें जन्म प्राप्त करता है ऐसी दशामें कौन ऐसा है जो अहंकार करे? ४७७.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ नरकभूमिकी सामग्री तथा नारकियोंका विकरालरूप जैसा है वैसा यदि किसीको एक क्षणमात्र भी स्वप्नमें दिखाये तो वह भयसे प्राणरहित हो जायगा।

नारकियोंके शरीरादिका एक कण यहाँ आ जाये तो उसकी दुर्गन्धसे यहाँके हजारों पंचेन्द्रिय जीव मृत्युको प्राप्त हो जायँ।

नारकियोंके शब्द ऐसे भयंकर तथा कठोर हैं कि यदि वे सुननेमें आये तो हाथियों और सिंहोंके हृदय फट जायँ।

नरकमें जो दुःखदायी सामग्री है उसका स्वभाव दिखलाने या अनुभव

करानेवाली समस्त मध्यलोकमें कोई वस्तु नहीं दिखती।

नरकमें जो दुःख हैं उनका कोई करोड़ों जिह्वाओं द्वारा करोड़ों वर्ष तक कथन करे तथापि एक क्षणमात्रके दुःखको करनेमें समर्थ नहीं है। ४७८. *(श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार)*

❀ उत्पत्ति, स्थिति और लयकी परिपाटीको समझनेवाले गुणी-जनोंका शोक तो स्वयं नष्ट हो जाता है। मध्यम बुद्धिमानका शोक आँखसे दो–चार आँसू बहानेसे शांत होता है; परन्तु जघन्य मतिमानका शोक तो मृत्युके साथ ही जाता है। ४७९. *(श्री सुभाषित रत्नसंदोह)*

❀ यह काम दोषोंकी खान है और गुणोंका नाश करनेवाला है, पापका निजबंधु है और यही बड़ी बड़ी आपत्तियोंका संगम करानेवाला है। ४८०. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ जो सूर्यदेव एक ही दिनमें प्रातःकाल उदयपना अनुभव करता है और तत्पश्चात् मध्याह्नमें खूब ऊपर चढ़कर लक्ष्मीका अनुभव करता है वह भी जब सायंकाल निश्चयसे अस्तको प्राप्त होता है। जब जन्म-मरणादि स्वरूप भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होनेसे किस मनुष्यके हृदयमें विषाद रहेगा? अर्थात् ऐसी दशामें किसीको भी विषाद नहीं करना चाहिये। ४८१.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ "मुझे ज्ञानवन्तको वह विषायाशारूप शत्रु कुछ भी नहीं कर सकता।" इस प्रकारके ज्ञानमदसे उन्मत्त होकर उस आशारूपी शत्रुसे किंचित् भी उपेक्षित रहना योग्य नहीं है। तीनों लोकको जिसने वशमें कर रखे हैं ऐसे आशारूपी शत्रुको अल्प गिनना योग्य नहीं है। तीन जगतका महा भयंकर तथा अद्वितीय शत्रु वही है। उसे तो सम्यक्प्रकारसे विचार कर-करके मूलसे सर्वथा क्षीण करना चाहिये। देखो, अनन्त और अगाध समुद्रमें रहा हुआ वडवानल महान समुद्रको भी बाधा उत्पन्न करता है अर्थात् शोषण करता है, उसी प्रकार छोटी-सी विषयाशा आत्माके

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अगाध ज्ञानसमुद्रको भी मलिन करती है, आवरण करती है, उससे तो निरन्तर सावधान रहना चाहिये। तथा जगतमें भी देखा जाता है कि जिसको शत्रुने दबा रखा हो, उसे शान्ति कहाँसे होगी? ४८२.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ अब संसारको छेद करनेवाली उस बोधिको पाकर बुद्धिमानको एक क्षणमात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं है। ४८३.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ आत्मस्वरूपमें ही आत्मबुद्धिवान अंतरात्मा शरीरकी गतिको—शरीरके विनाशको आत्मासे भिन्न मानता है और मरणके अवसरको एक वस्त्रका त्याग करके दूसरे वस्त्रका ग्रहण करनेकी भाँति समझकर अपनेको निर्भय मानता है। ४८४. (श्री समाधितंत्र)

❀ यदि झोंपड़ीमें आग लग जाय तो झोंपड़ीमें लगी हुई अग्नि झोंपड़ीको ही जलाती है, परन्तु उसमें रहे हुए आकाशको (रिक्त स्थानको) नहीं जलाती; उसी प्रकार शरीरमें जो नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं वे रोग उस शरीरको नष्ट करते हैं, परन्तु उस शरीरमें विद्यमान निर्मल ज्ञानमय आत्माको नष्ट नहीं करते। ४८५.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ संसारमें ऐसा कोई सुख और दुःख नहीं है जो मैंने नहीं भोगा। किंतु जैनागमरूपी अमृतका पान मैंने स्वप्नमें भी नहीं किया। इस अमृतके सागरकी एक बूंदको भी जो चख लेता है वह प्राणी फिर कभी भी जन्मरूपी अग्निका पात्र नहीं बनता। अर्थात् जैनशास्त्रोंका थोड़ासा भी स्वाद जिसे लग जाता है वह उनका आलोकन करके उस शाश्वत सुखको प्राप्त कर लेता है और फिर उसे संसारमें भ्रमण करना नहीं पड़ता। ४८६. (श्री उपासक-अध्ययन)

❀ पागल लोग तुझे पागल—बावला कहें तो उससे तू बुरा नहीं मानना—क्षुब्ध नहीं होना, लोग चाहे जैसा कहें, तू तो मोहको उखाड़कर महान सिद्धनगरीमें प्रवेश करना। ४८७. (श्री पाहुड-दोहा)

❀ अपने आत्माके उद्धारकी चिन्ता करना वह उत्तम चिन्ता है, शुभरागके वश अन्य जीवोंका भला करनेकी चिन्ता करना वह मध्यम चिन्ता है, काम-भोगकी चिन्ता करना वह अधम चिन्ता है और दूसरेका अहित करनेका विचार करना वह अधमसे अधम चिन्ता है। ४८८.

(श्री परमानन्द स्तोत्र)

❀ चन्द्र, सूर्य, वायु और पक्षी आदि आकाशमें ही गमन करते हैं; गाड़ी आदिका आवागमन पृथ्वी पर ही होता है तथा मत्स्यादि जलमें ही संचरण करते हैं; परन्तु यम (मृत्यु) आकाश, पृथ्वी और जलमें सर्व स्थानों पर पहुँचता है। इसलिये संसारी प्राणियोंका प्रयत्न कहाँ हो सकेगा? अर्थात् यदि काल समस्त संसारी प्राणियोंको ग्रास बनाता हो तो उससे बचनेके लिये किया जानेवाला किसी भी प्राणीका प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। ४८९. (श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ जब यह मरणके सन्मुख होता हुआ जीव इस शरीरको छोड़कर दूसरेमें जाता है तब जिनेन्द्रकथित धर्मको छोड़कर कोई दूसरा रक्षक नहीं है। ४९०. (श्री सारसमुच्चय)

❀ जो ज्ञान विना दुःखके भाया जाता है वह उपसर्गादि दुःख आ पड़ने पर नष्ट हो जाता है, इसलिये मुनिको अपनी शक्ति अनुसार कायक्लेशादिरूप दुःखोंसे आत्माकी शरीरादिसे भिन्न भावना भाना। ४९१. (श्री समाधितंत्र)

❀ जगतमें दूसरे जीवोंकी चौकी (रखवाली) बिना आत्मगुण धारण करनेवाले जीव अति अल्प हैं। बहुधा जगतवासी जीव लोकनिन्दाके भयसे ही पूर्व महापुरुषों द्वारा योजित सुन्दर बाह्य मर्यादामें प्रवर्तते हैं और वह

www.vitragvani.com

भी हितकारी है। भगवानका और आत्ममलिनताका जीवको जितना भय नहीं है उतना जगतका भय जीवोंको मर्यादामें रख रहा है, वैसे सर्व जीव मनोयोगके अनुसार काययोगको यदि खुला छोड़ दें तो जगतकी और जगतवासी जीवोंकी कितनी अवश्य अंधाधुंधी होगी? दुर्जन तो एक प्रकारसे सज्जनोंकी सज्जनताको अवैतनिक (बिना वेतनके) चौकीदार हैं; इसीलिये महापुरुष कहते हैं कि—''जगत एक प्रकारसे गुरुका कार्य करता है।'' ४९२. *(श्री आत्मानुशासन)*

❀ हे भव्य जीवो! यदि अपना हित चाहते हो तो गुरुकी वह शिक्षा मनको स्थिर करके सुनो। (कि इस संसारमें प्रत्येक प्राणी) अनादिकालसे मोहरूपी महा मदिरा पीकर, अपने आत्माको भूलकर व्यर्थ भटकता है। ४९३. *(श्री छहढाला)*

❀ जो शरीररूपी झोंपड़ी दुर्गन्धयुक्त अपवित्र धातुओंरूपी दीवारों सहित है, चर्मसे मढ़ी हुई है, विष्टा एवं मूत्र आदिसे भरपूर है; तथा भूख-प्यास आदिके दुःखोंरूपी चूहों द्वारा किये गये छिद्रोंसे युक्त है; वह क्लेशयुक्त शरीररूपी झोंपड़ी जब स्वयं ही वृद्धावस्थारूपी अग्निसे घिर जाती है तब भी यह मूर्ख प्राणी उसे स्थिर एवं अत्यन्त पवित्र मानता है। ४९४. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ हे भव्य! तुझे अन्य व्यर्थके कोलाहलसे क्या लाभ है? उस कोलाहलसे तू विरक्त हो और एक चैतन्यमात्र वस्तुको स्वयं निश्चल लीन होकर देख; छह महिने तक अभ्यास कर और देख कि ऐसा करनेसे अपने हृदयसरोवरमें जिसका तेज–प्रताप–प्रकाश पुद्गलसे भिन्न है ऐसे आत्माकी प्राप्ति नहीं होती या होती है। ४९५. *(श्री समयसार टीका)*

❀ जो पुरुष रात्रिको भोजन करता है वह सर्व प्रकारकी धर्मक्रियासे रहित होता है। रात्रि-भोजन करनेवाले पुरुषमें और पशुमें मात्र सींगोंके सिवा अन्य कोई अन्तर नहीं है। ४९६. *(श्री धर्म परीक्षा)*

❀ जिन्होंने अंतरंग दृष्टिसे अलौकिक सिद्धस्वरूप तेजको नहीं देखा है उन मूर्ख मनुष्योंको स्त्री, सुवर्णादि पदार्थ प्रिय लगते हैं, परन्तु जिन भव्य जीवोंका हृदय सिद्धोंके स्वरूपरूपी रससे भर गया है वे भव्य समस्त साम्राज्यको तृणसमान मानते हैं तथा शरीरको पर समझते हैं और उनको भोग रोग समान लगते हैं। ४९७. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ पूर्वकालमें हुए गणधरादि सत्पुरुष ऐसा बतलाते हैं कि जिस मृत्युसे अच्छे प्रकारसे दिये हुएका फल प्राप्त हो और स्वर्गलोकका सुख भोगें तो फिर सत्पुरुषको मृत्युका भय क्यों होगा? ४९८.

(श्री मृत्युमहोत्सव)

❀ तू लोकसमान मूढ़ होकर दिखायी देनेवाले (शरीरादि) पर पदार्थका उपकार करता है (अब) तू परके उपकारकी इच्छाको छोड़कर अपने उपकारमें तत्पर हो। ४९९. *(श्री इष्टोपदेश)*

❀ आचार्य कोमल सम्बोधनसे कहते हैं कि–हे भाई! तू किसी भी प्रकार महाकष्टसे अथवा मरकर भी तत्त्वका कौतूहली होकर इन शरीरादि मूर्त द्रव्यका एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ौसी होकर आत्माका अनुभव कर कि जिससे अपने आत्माको विलासरूप, सर्व पर द्रव्योंसे भिन्न देखकर इन शरीरादिक मूर्तिक पुद्गल द्रव्योंके साथ एकत्वके मोहको तू तुरन्त छोड़ेगा। ५००. *(श्री समयसार-टीका)*

❀ जिस लेश्यामें जीव मरणको प्राप्त होता है उसी लेश्यामें वह उत्पन्न होता है ऐसा एकान्त नियम है। ५०१. *(श्री धवला)*

❀ लोगोंके संसर्गसे वचनकी प्रवृत्ति होती है; वचनप्रवृत्तिसे मनकी व्यग्रता होती है, उससे चित्तमें विविधप्रकारके विकल्प उठने लगते हैं; इसलिये योगीको लौकिकजनोंके संसर्गका त्याग करना। ५०२.

(श्री समाधितंत्र)

www.vitragvani.com

❀ यदि परिग्रहयुक्त जीवोंका कल्याण हो सकता हो तो अग्नि भी शीतल हो सकती है, यदि इन्द्रियजन्य सुख वास्तविक सुख हो सकता हो तो तीव्र विष भी अमृत बन सकता है, यदि शरीर स्थिर रह सकता हो तो आकाशमें उत्पन्न होनेवाली बिजली उससे अधिक स्थिर हो सकती है तथा इस संसारमें यदि रमणीयता हो सकती हो तो वह इन्द्रजालमें भी हो सकती है। ५०३. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ निश्चयसे रात्रि-भोजन करनेमें अधिक रागभाव है और दिनको भोजन करनेमें अल्प रागभाव है; जैसे अन्नके भोजनमें रागभाव अल्प है और मांसके भोजनमें रागभाव अधिक है। ५०४.

(श्री पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय)

❀ मेरे चित्तमें कल्पवासी देवोंके इन्द्रको, नागेन्द्रको तथा चक्रवर्तीको प्राप्त होनेवाला सुख निरन्तर तृणसमान तुच्छ लगता है। अल्पबुद्धिमान सदा भूमि, स्त्री, लक्ष्मी, शरीर तथा पुत्रसे सुख मानता है—यह आश्चर्यकारी है। ५०५. *(श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी)*

❀ चक्रवर्ती अथवा अन्य साधारण राजाओंकी आज्ञाका भंग होनेसे भी मरणका दुःख होता है, तो क्या त्रिलोकीनाथ ऐसे देवाधिदेव जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाके भंगसे दुःख नहीं होगा?—अवश्य होगा ही। ५०६. *(श्री उपदेश सिद्धांत रत्नमाला)*

❀ जो हलाहल विष शीघ्र ही प्राणोंको हरनेवाला है उसका पी लेना कहीं अच्छा है, परंतु प्राणियोंको निरंतर दुःख देनेवाले मधुका भक्षण करना योग्य नहीं है। ५०७. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ जिस प्रकार प्रज्वलित दीपक अपने हाथमें रखकर भी कोई कुएँमें गिर पड़े तो उसे दीपकका लेना व्यर्थ है, वैसे ही तत्त्वज्ञान प्राप्त करके भी हेय-उपादेयके विवेकरहित चाहे जैसा प्रवर्तनेसे तत्त्वज्ञानका प्राप्त होना व्यर्थ जाता है। ५०८. *(श्री जीवंधर चरित्र)*

❀ जीवोंके मनरूपी दैत्यका प्रभाव दुर्विचिंत्य है, किसीके चिंतवनमें नहि आ सकता। क्योंकि यह अपनी चंचलताके प्रभावसे दशों दिशाओंमें, दैत्योंके समूहमें, इन्द्रके पूरोंमें, आकाशमें तथा द्वीपसमुद्रोंमें, विद्याधर मनुष्य देव धरणेन्द्रादिके निवासस्थानोंमें तथा वातवलयों सहित तीन लोकरूपी घरमें सर्वत्र आधे क्षणमें ही भ्रमण कर आता है। इसका रोकना अतिशय कठिन है। जो योगीश्वर इसे रोकते हैं वे धन्य हैं। ५०९.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ हे आत्मा! तूने इच्छित लक्ष्मी प्राप्त कर ली है, समुद्रपर्यंत पृथ्वीका भी भोग कर लिया है और जो विषय स्वर्गमें भी दुर्लभ हैं ऐसे अत्यन्त मनोहर विषय भी प्राप्त कर लिये हैं तथापि पश्चात् मृत्यु आना हो तो सब विषयुक्त आहारके समान अत्यन्त रमणीय होनेपर भी धिक्कारने योग्य है। इसलिये तू एकमात्र मोक्षकी खोज कर। ५१०.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ बड़े खेदकी बात है : जो कोई कामके वश हो जाते हैं तो वे बुद्धिहीन हैं, अपनेको पापी बनाकर संसारसागरमें गिरा देते हैं! ५११.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ हे भव्य! तू परम श्रद्धापूर्वक दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप (आत्माके) शरणका सेवन कर; इस संसारमें परिभ्रमण करते हुए जीवोंको अन्य कोई भी शरण नहीं है। ५१२. *(श्री द्वादशानुप्रेक्षा)*

❀ परमें अनुकम्पा है सो अपनेमें ही अनुकम्पा है, इसलिये परका बुरा करना विचारे तब अपने कषायभावसे अपना बुरा स्वयमेव हुआ। परका बुरा न विचारे तब अपने कषायभाव नहीं हुए, तब अपनी अनुकम्पा ही हुई। ५१३. *(श्री दर्शनपाहुड)*

❀ दूसरी इधर-उधरकी बातें करना छोड़ो; वह तो मात्र एक–दो

www.vitragvani.com

शब्दोंसे संक्षेपमें ही पूरी कर दो और सदैव निजात्मतत्त्वके अभ्यास द्वारा आत्मगुणोंकी वृद्धि करो। ५१४. (श्री नेमीश्वर-वचनामृत-शतक)

❀ जो कोई किसी मनुष्यको मर जानेके बदलेमें नगर, पर्वत तथा सुवर्ण रत्न धन धान्यादिकसे भरी हुई समुद्र पर्यंतकी पृथ्वीका दान करे तो भी अपने जीवनको त्याग करनेमें उसकी इच्छा नहि होगी। भावार्थ– मनुष्योंको जीवन इतना प्यारा है कि मरनेके लिये जो कोई समस्त पृथ्वीका दान दे तो भी मरना नहि चाहता। इस कारण एक जीवको बचानेमें जो पुण्य होता है वह समस्त पृथ्वीके दानसे भी अधिक होता है। ५१५.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ जिसे जीवन और धनकी आशा है, उसके लिये तो कर्म विधातारूप बनता है, परन्तु जिस महाभाग्यको आशाका ही अभाव वर्तता है, उसे विधाता क्या कर सकेगा? ५१६. (श्री आत्मानुशासन)

❀ जैसे सूर्यका उदय अस्त होनेके लिये होता है उसी प्रकार निश्चयसे समस्त प्राणियोंका यह शरीर भी नष्ट होनेके लिये उत्पन्न होता है। तो फिर काल आने पर अपने किसी बन्धु आदिका मरण होनेसे कौन बुद्धिमान मनुष्य उसके लिये शोक करेगा? अर्थात् उसके लिये कोई भी बुद्धिमान शोक नहीं करता। ५१७. (श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ मैं ऐसा समझता हूँ कि जो पुरुष जिनधर्मियोंकी सहायता करता है उसका नाम लेनेसे भी मोहकर्म लज्जित होकर मन्द पड़ जाता है, और उसके गुणगान करनेसे कर्म गल जाते हैं। ५१८.

(श्री उपदेश सिद्धांत रत्नमाला)

❀ जिसके वशमें पांचों इन्द्रियाँ हैं और जिसका मन दुष्ट या दोषी नहीं है, जिसका आत्मा धर्ममें रत है, उसका जीवन सफल है। ५१९.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ कामकी चाहके दाहको सह लेना अच्छा है परंतु शील या ब्रह्मचर्यका खंडन अच्छा नहीं है। जो मानव शीलखंडनकी आदत डाल देते हैं, निश्चयसे उनका नरकमें पतन होता है। ५२०. (श्री सारसमुच्चय)

❀ हे मूढ़ प्राणी! अनेक प्रकारकी असत्य कला, चतुराई, श्रृंगारादि झूठी विद्याओंके कौतूहलसे अपने आत्माको मत ठग, परन्तु तुझे करने योग्य जो हितकारी कार्य हैं उन्हें कर। जगतकी इन समस्त कलाओंका ज्ञान विनाशीक है। क्या तू यह बात नहीं जानता? ५२१.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ मोहके उदयसे उत्पन्न हुई मोक्षप्राप्तिकी भी अभिलाषा वह मोक्षकी प्राप्तिमें विघ्नकर्ता बनती है, तो फिर भला, शांत मोक्षाभिलाषी जीव अन्य किस वस्तुकी इच्छा करेगा?–किसी की भी नहीं। ५२२.

(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ जिस श्रावकने जहाँ-तहाँ दौड़नेवाले मनको वशमें किया है उसने संतोषरूपी अमृतको प्राप्त करके कौनसे सुखको प्राप्त नहीं किया? अर्थात् संतोषकी प्राप्ति होनेसे उसने सर्व प्रकारके सुखको प्राप्त किया है, क्योंकि संतोष ही सुख है और असंतोष ही दुःख है। ५२३.

(श्री सुभाषित रत्नसंदोह)

❀ पर-परिचयसे आकुलता है, निज-परिचयसे सुख-शान्ति है, जिनदेवने ऐसा परमार्थ कहकर उसे हितका संकेत किया है। ५२४.

(श्री आत्मावलोकन)

❀ अभिमानरूपी विषको उपशांत करने हेतु अरिहंतदेवका तथा निर्ग्रन्थ गुरुका स्तवन किया जाता है, गुणगान किया जाता है, परन्तु अरेरे! उससे भी कोई मानका पोषण करे तो वह महान अभागी है। ५२५. (श्री उपदेश सिद्धांत रत्नमाला)

www.vitragvani.com

❀ भूत-पिशाचके समान कामभावने जगतके सर्व प्राणीयोंको दोषी बना दिया है। वह जीव कामके आधीन होकर संसाररूपी सागरमें सदा भ्रमण किया करता है। ५२६. (श्री सारसमुच्चय)

❀ विषय-कषायोंमें जाते हुए मनको पराङ्मुख करके निरंजन तत्त्वमें स्थिर करो। बस! इतना ही मोक्षका कारण है। अन्य कोई तंत्र या मंत्र मोक्षके कारण नहीं हैं। ५२७. (श्री पाहुड-दोहा)

❀ आर्य पुरुषोंने तराजूमें एक तरफ तो समस्त पापोंको रखा और एक तरफ असत्यसे उत्पन्न हुए पापको रखकर तौला तो दोनों समान हुए। भावार्थ–असत्य अकेला ही समस्त पापोंके बराबर है। ५२८.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ जिस प्रकार वृक्षोंमें पत्र, पुष्प और फल उत्पन्न होते हैं और वे निश्चयसे गिरते भी हैं, उसी प्रकार कुलोंमें जो पुरुष उत्पन्न होते हैं वे मरते भी हैं। तो फिर बुद्धिमान मनुष्योंको उनके उत्पन्न होने पर हर्ष और मरने पर शोक किसलिये होना चाहिये? नहीं होना चाहिये। ५२९. (श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)

❀ रे जीव! तू अज्ञानी–मिथ्यादृष्टि जीवोंके दोषका किसलिये निश्चय करता है?–वे तो मिथ्यादृष्टि हैं ही; तू अपने आत्माको स्वयं ही क्यों नहीं जानता? यदि तुझे निश्चय सम्यक्त्व न हो तो तू भी दोषवान है। इसलिये जिनवाणीके अनुसार तू दृढ़ श्रद्धा कर। ५३०.

(श्री उपदेश सिद्धांत रत्नमाला)

बडे खेदकी बात है कि नरकरूपी गड्ढेमें पटकनेवाले अत्यन्त भयानक कामने मानवोंको दुष्ट बना दिया है तथा धर्मरूपी अमृतके पानसे छुड़ा दिया है। ५३१. (श्री सारसमुच्चय)

❀ जिसमें (जिस गड्ढेमें) छिपे हुए क्रोधादि भयंकर सर्प दिखायी नहीं

देते ऐसा जो मिथ्यात्वरूपी घोर अंधकारयुक्त महान गर्त उससे डरते रहना योग्य है। ५३२. (श्री आत्मानुशासन)

❀ दावानलसे दग्ध हुआ वन तो किसी कालमें हरित (हरा) हो भी जाता है, परंतु जिह्वारूपी अग्निसे (कटोर मर्मछेदी वचनोंसे) पीड़ित हुआ लोक बहुत काल बीत जाने पर भी हरित (प्रसन्नमुख) नहि होता। भावार्थ–दुर्वचनका दाग मिटना कठिन है। ५३३.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ मनुष्य अपने दोषोंको यद्यपि कपटसे आच्छादित करता है (ढंकता है) तो भी वह लोकमें क्षणभरमें ही इस प्रकारसे अतिशय प्रकाशमें आ जाता है–प्रगट हो जाता है–कि जिस प्रकारसे जलमें डाला गया मल क्षणभरमें ही ऊपर आ जाता है। अतएव मनुष्योंको उस मायाचारके लिये हृदयमें थोड़ा-सा भी स्थान नहीं देना चाहिये। ५३४.

(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ दूसरोंको ठग लूंगा ऐसा विचार कर जो कोई मायाचारका उपाय करते हैं उन लोगोंने इसलोक तथा परलोक दोनोंमें सदा ही अपने आपको ठगा है। ५३५. (श्री सारसमुच्चय)

❀ सर्व कषायोंमें मायाका फल बहुत ही पापको उत्पन्न करता है। जो जीव निगोदमें उत्पन्न होकर महादुःखी होता है वह माया-कषायका फल है तथा अन्य जो क्रोध, मान, माया, लोभ–इन कषायोंसे नरक मिलता है, निगोदमें नहीं जाता। ५३६. (श्री सुदृष्टि तरंगिणी)

❀ जिसमें समस्त प्रकारके विचार करनेकी सामर्थ्य है, तथा जिसका पाना दुर्लभ है ऐसे मनुष्यजन्मको पाकर भी जो अपना हित नहीं करते, वे अपने घात करनेके लिये, विषवृक्षको बढाते हैं। ५३७.

(श्री ज्ञानार्णव)

www.vitragvani.com

❀ पूर्वोपार्जित, कर्म द्वारा जिस प्राणीका अंत जिस समय लिखा गया है उसका उसी समय अन्त होता है। ऐसा निश्चित् जानकर किसी प्रिय व्यक्तिका मरण होनेपर भी शोक छोड़ो और विनयपूर्वक सुखदायक धर्मका आराधन करो। ठीक है—जब सर्प दूर चला जाता है तब उसकी लकीरको कौन बुद्धिमान पुरुष लाठी आदि द्वारा पीटता है? अर्थात् कोई भी बुद्धिमान वैसा नहीं करता। ५३८. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ ऐसा कोई सुख इस संसारमें नहीं है जो अनेक तरहसे इस जीवने रातदिन देव-मनुष्य और तिर्यंच गतियोंमें भ्रमते हुए न पाया हो।

इस तरह चारों गतियोंमें इस भ्रमणके कष्टको अत्यंत विनाशीक जानकर क्यों वैराग्यको नहीं प्राप्त होते हो ? तेरे इस जीवनको धिक्कार हो। ५३९. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ जो जीव संसारसे-भवभयसे डरता है उसे जिनभगवानकी आज्ञाका भंग करते हुए भय लगता है; और जिसे भवभयका डर नहीं है उसे तो जिन-आज्ञाका भंग करना वह खेलमात्र है। ५४०.

(श्री उपदेश सिद्धांत रत्नमाला)

❀ इस अनंतानुबंधीका वासनाकाल संख्यात असंख्यात अनंत भवपर्यंत चला जाय है। एक बार किसी जीव पर किया जो क्रोधादिकभाव सो अनंतकाल तांई दुःखदाई हैं, तातैं इनके उपजनेका कारण घटावना, इनके अभाव होनेका कारण मिलावना, सुसंगतिमें रहना, कुसंगतिमें न रहना, इनके नाशका प्रथम उपाय तो यह है, पीछे जैसें बने तैसें इनको छोड़नेका उपाय करना। ५४१. *(श्री भावदीपिका)*

❀ जैसे कोढी पुरुष शरीरको खुजाने तथा तपानेसे सुख मानता है उसी प्रकार तीव्र कामरूपी रोगोंसे दुःखित हुआ पुरुष भी मैथुनकर्मको सुख मानता है। यह बड़ा विपर्यय है, क्योंकि जैसे खुजानेसे खाज बढ़ती है और अंतमें कष्टदायक जलनको पैदा करती है इस प्रकार स्त्रीका सेवन

भी कामसेवनेच्छाको उत्तरोत्तर बढ़ाता है और अंतमें कष्टदायक होता है ! ५४२. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ संसाररूपी वनमें उत्पन्न हुआ जो मनुष्यरूपी सुन्दर वृक्ष वह स्त्रीरूपी सुशोभित लताओंसे घिरा हुआ पुत्र-पौत्रादिरूपी मनोहर पर्णोसे रमणीय तथा विषय-भोगजनित सुख जैसे फलोंसे परिपूर्ण होता है; यदि वह मृत्युरूपी तीव्र दावानलसे व्याप्त न होता तो विद्वान और क्या देखते? अर्थात् वह मनुष्यरूपी वृक्ष उस कालरूपी दावानलसे नष्ट होता ही है, यह देखते हुए भी विद्वान आत्महितमें प्रवृत्ति नहीं होते यह खेदकी बात है। ५४३. *(श्री पद्मनन्दिपंचविंशति)*

❀ प्रश्न :—बुद्धिमान पुरुषको किससे डरना चाहिये?

उत्तर :—बुद्धिमान पुरुषको संसाररूपी भयंकर अटवीसे (कि जहाँ जन्म-मरणके भयंकर दुःख सहना पड़ते हैं उससे) डरना चाहिये। ५४४.

(श्री रत्नमाला)

❀ काम, क्रोध तथा मोह ये तीनों ही इस जीवके महान वैरी हैं। जब तक इन शत्रुओंसे मनुष्य पराजित हैं तब तक मानवोंको सुख किस तरह हो सकता है ? ५४५. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ इस जगतमें कोई ऐसा स्थान नहीं रहा, जहां पर यह जीव निश्चय-व्यवहाररत्नत्रयको कहनेवाले जिनवचनको नहीं पाता हुआ अनादि कालसे चौरासी लाख योनियोंमें होकर न घूमा हो, अर्थात् जिनवचनकी प्रतीति न करनेसे सब जगह और सब योनियोंमें भ्रमण किया, जन्म-मरण किये। यहां यह तात्पर्य है कि जिनवचनके न पानेसे यह जीव जगतमें भ्रमा, इसलिये जिनवचन ही आराधनेयोग्य हैं। ५४६.

(श्री परमात्मप्रकाश)

❀ जिन महा पराक्रमी वीर पुरुषोंने युद्धमें शत्रुके हस्तीके दातों पर

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

चढ़कर वीरश्रीको दृढ किया है, अर्थात् विजय प्राप्त किया है ऐसे शूरवीर योद्धा भी स्त्रियाद्यङ-३ग्नेंद्यघ्-०ग्नके द्वारा खंडित (पतित) हो जाते हैं, अर्थात् स्त्रीके सामने किसीका भी पराक्रम नहि चलता। ५४७.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ बुद्धिमान पुरुष! यह तत्त्वरूपी अमृत पीकर अपरिमित जन्म-परम्परा (संसार)के मार्गमें परिभ्रमण करनेसे उत्पन्न हुई थकानको दूर करो। ५४८. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ जितना अनुराग विषयोंमें करता है—मित्र, पुत्र, स्त्री, धन और शरीरमें करता है, उतनी रुचि–श्रद्धा–प्रतीतिभाव स्वरूपमें तथा पंच परमगुरुमें करे तो मोक्ष अति सुगम हो जाय। जैसे सांध्यकालीन लाल सूर्यास्त होनेका कारण है और प्रभातकी लालिमा सूर्योदय करती है, वैसे ही विविध परमगुरुके बिना शरीरादिका राग केवलज्ञानके अस्त होनेका कारण है और पंच परमगुरुका राग केवलज्ञानके उदयका कारण है।—ऐसा पंच परमगुरुराग है। ५४९. *(श्री अनुभव प्रकाश)*

❀ परस्पर झगडा उठनेसे बहुत नष्ट हो चुके, बडे बडे धनिक भी नष्ट हो गये; दुष्टोंके साथ झगडा करना अच्छा नहीं; यदि द्रव्यका त्याग करना पडे तो ठीक है। ५५०. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ प्रश्न :—अवधीरणा (निन्द्रा, अवहेलना–उपेक्षा) कहाँ करना?

उत्तर :—दुष्ट पुरुष, परस्त्री और परधनकी सदैव उपेक्षा करना चाहिये—उनसे सदा दूर रहना चाहिये। (दुष्ट पुरुष, परस्त्री तथा पराये धनके परिचयकी सदा अवहेलना करना चाहिये। ५५१.

(श्री रत्नमाला)

❀ हे जीव! यहाँ जो तुझे इष्टका वियोग और अनिष्टका संयोग होता है वह तेरे पूर्वकृत पापके उदयसे होता है। इसलिये तू शोक

किसलिये करता है? उस पापके ही नाशका प्रयत्न कर कि जिससे भविष्यमें वे दोनों (इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग) न हो सकें। ५५२.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ इस जगतमें जो सुर (कल्पवासी देव), उरग (भवनवासी) देव और मनुष्योंके इन्द्र अर्थात् चक्रवर्तीपनेके ऐश्वर्य हैं, वे सब इन्द्रधनुषके समान हैं अर्थात् देखनेमें तो अति सुंदर दिख पड़ते हैं परंतु देखते देखते विलय हो जाते हैं। ५५३. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ पिछली अनेक पर्यायोंका संस्कार लागु हुआ होनेसे गुरुकी शिक्षाके बिना ही प्राणी मैथून, आहार, विहार आदि कार्योंमें प्रवृत्ति करते रहते हैं। ५५४. *(श्री बुधजन-सतसई)*

❀ जैसे तृण और लकड़ीसे अग्नि तृप्त नहीं होती, चौदह-चौदह हजार नदियों सहित गंगा, सिन्धु आदि महानदियोंके जलसे लवण समुद्र तृप्त नहीं होता, वैसे ही यह आत्मा भी इच्छित सुखोंका कारण—ऐसे आहार, स्त्री, वस्त्रादि पदार्थोंसे तृप्त नहीं होता। ५५५. *(श्री मूलाचार)*

❀ मरण पर्यंत कष्ट तो संसारी जीव स्वीकार करता है, परन्तु क्रोधादिकी पीड़ा सहन करना स्वीकार नहीं करता। इसलिये ऐसा निश्चय होता है कि मरणादिकसे भी उन कषायोंकी पीड़ा अधिक है। ५५६.

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

❀ आत्महित-वांछक पंडितका कर्तव्य है कि विपत्तियोंके पड़ने पर भी जिस तरह मनमें अत्यधिक विकार उत्पन्न न हो उस तरह ही आचरण करना चाहिये। ५५७. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ मोक्षके अर्थी ऐसे मुझे किसीके भी साथ–मित्र-शत्रु अथवा मध्यस्थ–निकट वर्तते प्राणीके साथ–काम नहीं है। ५५८.

(श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी)

www.vitragvani.com

❀ धर्मका मुख्य चिह्न यह है कि जो-जो क्रिया अपनेको अनिष्ट लगती हो वह-वह क्रिया अन्यके लिये मन-वचन-कायसे स्वप्नमें भी नहीं करना। ५५९. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ हे दुर्बुद्धि प्राणी! यदि यहाँ तुझे किसी भी प्रकारसे मनुष्य-जन्म प्राप्त हो गया है तो फिर प्रसंग पाकर अपना कार्य (–आत्महित) कर ले। नहीं तो यदि तुझे मरनेके पश्चात् तिर्यंच पर्याय प्राप्त हुई तो तुझे समझानेके लिये कौन समर्थ है? अर्थात् कोई समर्थ नहीं हो सकेगा। ५६०. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ जीवोंका आयुर्बल तो अंजलिके जलसमान क्षण क्षणमें निरंतर झरता है और यौवन कमलिनीके पत्र पर पडे हुए जलबिंदुके समान तत्काल ढलक जाता है। यह प्राणी वृथा ही स्थिरताकी इच्छा रखता है। ५६१. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ ऐसा कोई शरीर नहीं जो इसने न धारण किया हो, ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है कि जहाँ न उत्पन्न हुआ हो और न मरण किया हो, ऐसा कोई काल नहीं है कि जिसमें इसने जन्म-मरण न किये हों, ऐसा कोई भव नहि जो इसने पाया न हो, और ऐसे अशुद्ध भाव नहीं है जो इसके न हुए हों। इस तरह अनंत परावर्तन इसने किये हैं। ५६२.

(श्री परमात्मप्रकाश)

❀ सारे संसारमें होली खेली जा रही है, सर्वत्र धूल उड़ रही है, ऐसी स्थितिमें बाहर जानेवाला बच नहीं सकता। जो अपने स्थान पर अपने आपमें रहता वही बच सकता है। ५६३.

(श्री बुधजन-सत्सई)

❀ जब यह प्राणी मोहकी संगतिसे उन्मत्त होकर इन्द्रियोंके आधीन आचरण करता है तब यह आत्मा ही अपने लिये दुःखोंका कारण होता हुआ तेरा शत्रु हो जाता है। ५६४. *(श्री सारसमुच्चय-टीका)*

❀ प्रियजनकी मृत्यु होनेपर जो शोक किया जाता है वह तीव्र आशातावेदनीय कर्म उत्पन्न करता है, जो आगे (भविष्यमें) भी विस्तार पाकर प्राणीको अनेक प्रकारके दुःख देता है; जैसे योग्य भूमिमें बोया हुआ छोटा-सा वड़का बीज भी सैकड़ों शाखाओं सहित वटवृक्षरूपसे विस्तार पाता है। इसलिये ऐसा अहितकारी वह शोक प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिये। ५६५. *(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)*

❀ अरे जीव! जिनवरको अपने मनमें स्थाप, विषय-कषायको छोड़; सिद्धिमहापुरीमें प्रवेश कर, और दुःखोंको पानीमें डुबोकर तिलांजलि दे। ५६६. *(श्री पाहुड दोहा)*

❀ जीवोंके मनोज्ञ विषयोंके साथ संयोग स्वप्नके समान हैं, क्षणमात्रमें नष्ट हो जाते हैं। जिनकी बुद्धि ठगनेमें उद्धत हैं ऐसे ठगोंकी भांति ये किंचित्काल चमत्कार दिखाकर फिर सर्वस्व हरनेवाले हैं। ५६७.

(श्री ज्ञानार्णव)

❀ यह जीव अपने भाई बन्धुओंके साथ साथ नहीं जन्मता है, न बन्धुओंके साथ साथ मरता है। मूढ बुद्धि मानवोंका अपने बन्धु एवम् रिस्तेदारोंमें स्नेह वृथा ही है। ५६८. *(श्री सारसमुच्चय)*

❀ संसारी प्राणीओंकी गति उल्टी होती है। आत्म-अहित होने पर भी वे प्रसन्न होते हैं। होलीमें फंसा देते हैं, नाचते हैं और लज्ञाका परित्याग कर भांड समान स्वांग बनाते हैं। ५६९.

(श्री बुधजन-सत्सई)

❀ जो अपनी अगली-पिछली बातको (भूत-भविष्यके परिणामको) नहीं जानता वही भवसुख (इन्द्रिय विषयों)के लिये तरसता है; जो अपनी अगली-पिछली बातको (भूत-भविष्यके अपने अस्तित्वको) जानता है वह कभी संसारकी किंचित्मात्र इच्छा नहीं करता। ५७०.

(श्री नेमीश्वर-वचनामृत-शतक)

www.vitragvani.com

❀ देवालयके पाषाण, तीर्थका जल या पुस्तकके सर्व काव्य आदि जो वस्तुएँ खिली हुई दिखती हैं वे सब कालरूपी अग्निका ईंधन हो जायँगी। ५७१. *(श्री पाहुड दोहा)*

❀ जो संसारके भ्रमणसे उदास है तथा कल्याणमय मोक्षके सुखके लिये अत्यंत उत्साही हैं वे ही साधुओंके द्वारा बुद्धिमान कहे गये हैं। बाकी सब जीव अपने आत्माके पुरुषार्थको ठगनेवाले हैं। ५७२.

(श्री सारसमुच्चय)

❀ इस संसारमें प्राणीकी माता तो मर कर पुत्री हो जाती है और बहिन मर कर स्त्री हो जाती है। और फिर वही स्त्री मर कर आपकी पुत्री भी हो जाती है। इसी प्रकार पिता मर कर पुत्र हो जाता है तथा फिर वही मर कर पुत्रका पुत्र हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तन होता ही रहता है। ५७३. *(श्री ज्ञानार्णव)*

❀ आशारूपी अलंघ्य अग्निमें धनादिरूप ईंधनके गट्ठे डालकर उस आशारूपी अग्निको प्रतिपल बढ़ाकर उसमें निरन्तर जलने पर भी अपने शांत हुआ मानना यही वास्तवमें जीवका अनादि विभ्रम है। ५७४.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ धर्मका सत्यार्थ मार्ग बतलानेवाले स्वाधीन गुरुका सुयोग प्राप्त होनेपर भी जो निर्मल धर्मका स्वरूप नहीं सुनते वे पुरुष दुष्ट और धृष्ट चित्तवाले हैं, तथा भवभयसे रहित सुभट हैं। ५७५.

(श्री उपदेश-सिद्धान्त-रत्नमाला)

❀ प्रथम तो, जीवोंको सुख-दुःख वास्तवमें अपने कर्मके उदयसे ही होते हैं, क्योंकि अपने कर्मोदयके अभावमें सुख-दुःख होना अशक्य है; तथा अपना कर्म दूसरेसे दूसरेको नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह (अपना कर्म) अपने परिणामसे ही उपार्जित होता है; इसलिये किसी भी

प्रकार दूसरा दूसरेको सुख-दुःख नहीं कर सकता। इसलिये 'मैं पर जीवोंका सुखी-दुःखी करता हूँ और पर जीव मुझे सुखी-दुःखी करते हैं' ऐसा अध्यवसाय निश्चयसे अज्ञान है। ५७६. *(श्री समयसार)*

❀ जो कितने ही राजा भृकुटिकी वक्रतासे ही शत्रुओंको जीत लेते हैं उनके भी वक्षस्थलमें जिसने दृढ़तासे बाणका आघात किया है ऐसे उस पराक्रमी कामदेवरूपी सुभटको जिन शांत मुनियोंने शस्त्रके बिना ही जीत लिया है उन मुनियोंको नमस्कार हो। ५७७.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ प्रश्न :—स्व और परका वंचक (ठगनेवाला) कौन है?

उत्तर :—माया—छल कपट (वह आत्मवंचिका है) ५७८.

(अपरा प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)

❀ जो मनुष्य उत्पन्न हुआ है वह मृत्युका दिवस आनेपर मरता ही है, उस समय उसकी रक्षा करनेवाला तीनों लोकमें कोई भी नहीं है। इसलिये जो अपने इष्टजनकी मृत्यु होनेपर शोक करता है वह मूर्ख निर्जन वनमें चिल्लाकर रुदन करता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जनशून्य (मनुष्यरहित) वनमें रुदन करनेवालेके रोनेके कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार किसी इष्टजनकी मृत्यु होनेपर उसके लिये शोक करनेवालेका भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। परन्तु उससे दुःखदायक नवीन कर्मोंका ही बंध होता है। ५७९.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ हे भव्य! ईंधनके योगसे अग्नि प्रज्वलित होती है और बिना ईंधनके अपने आप बुझ जाती है। परन्तु अनादि मोहाग्नि तो इतनी प्रबल है कि वह परिग्रहादि ईंधनकी प्राप्ति होनेपर तृष्णारूपी ज्वालासे अधिक भड़कती है और उसकी अप्राप्तिमें प्राप्त करनेकी व्याकुलतासे प्रज्वलित रहती है। इस प्रकार अति प्रबल ऐसी मोहाग्नि दोनों प्रकारसे

www.vitragvani.com

जीवको जलाती है, इसलिये मोहाग्निके समान इस जगतमें अन्य कोई भयंकर अग्नि नहीं है। ५८०. (श्री आत्मानुशासन)

❀ जो यह कामका दाह है सो अग्निके समान बढ़ जाता है जिस कामकी आगमें मानवोंका यौवन और धन होमे जाते हैं, जला दिये जाते हैं। ५८१. (श्री सारसमुच्चय)

❀ यह एक मरणके समय होनेवाली संलेखना ही मेरे धर्मरूपी धनको मेरे साथ ले जानेमें समर्थ है। इस प्रकार भक्तिसहित निरन्तर भावना करनी चाहिये। ५८२. (श्री पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय)

❀ तीन लोकके जीवोंको निरन्तर मरता हुआ देखकर भी जो जीव अपने आत्माका अनुभव नहीं करते और पापोंसे विरक्त नहीं होते—ऐसे जीवोंकी धृष्टताको धिक्कार हो। ५८३. (श्री उपदेश सिद्धांत रत्नमाला)

❀ दुःखके कारण मिलने पर दुःखी न हो तथा सुखके कारण मिलने पर सुखी न हो परन्तु ज्ञेयरूपसे उनका जाननेवाला (ज्ञाता) ही रहे; यही सच्चा परिषहजय है। ५८४. (श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

❀ हे जीव ! यह शरीर तेरा शत्रु है, क्योंकि दुःखोंको उत्पन्न करता है, जो इस शरीरका घात करे, उसको तुम परम मित्र जानो। ५८५.

(श्री परमात्मप्रकाश)

❀ कषायरूपी शत्रु निर्वाणमें जितना विघ्न करता है उतना विघ्न कोई शत्रु नहीं करता; अग्नि नहीं करती, वाघ नहीं करता, काला सर्प नहीं करता। शत्रु तो एक जन्ममें दुःख देता है, अग्नि एकबार जलाती है, वाघ एकबार भक्षण करता है, काला सर्प एकबार डँसता है, परन्तु कषायभाव अनन्त जन्मोंमें दुःख देता है। ५८६.

(श्री भगवती आराधना)

❀ आत्माका निग्रह तथा अनुग्रह करनेमें कोई समर्थ नहीं है,

इसलिये तत्त्वज्ञानियोंको कहीं भी परपदार्थमें रोष या तोष नहीं करना चाहिये। ५८७. (श्री योगसार प्राभृत)

❀ किसान द्वारा एकवर्ष तक कितने-कितने कष्ट उठाकर प्राप्त किये हुए अनाजको, खलिहानमें अग्निकी एक चिन्गारी आ पड़नेसे उसे जला देती है, वैसे ही क्रोधरूपी अग्नि दीर्घकालीन साधुपनेरूप सारभूत वस्तुको क्षणमात्रमें जला देती है—नष्ट कर देती है। ५८८.

(श्री भगवती आराधना)

❀ पापकर्मके उदयसे मनुष्य बंधु–बांधवोंके मध्यमें रहते हुए भी दुःख भोगता है और पुण्यकर्मके उदयसे शत्रुके घरमें रहकर भी सुख भोगता है। जब पुरुषका भाग्योदय होता है तो वज्रपात भी फूल बन जाता है और भाग्यके अभावमें फूल भी वज्रसे कठोर हो जाता है। ५८९. (श्री सुभाषितरत्नसंदोह)

❀ मैं जहाँ-जहाँ देखता हूँ वहाँ सर्वत्र आत्मा ही दृष्टिगोचर होते हैं, तो फिर मैं किसकी समाधि करूँ और किसे पूजूँ? छूत-अछूत कहकर किसे छोड़ूँ? किसके साथ हर्ष या शोक करूँ? तथा किसका सन्मान करूँ? ५९०. (श्री पाहुड दोहा)

❀ जिस प्रकार नीमके वृक्षमें उत्पन्न हुआ कीड़ा उसके कड़ुवे रसको पीता हुआ उसे मीठा जानता है, उसी प्रकार संसाररूपी विष्टामें उत्पन्न हुए ये मनुष्यरूपी कीडे स्त्री-संभोगसे उत्पन्न हुए खेदको ही सुख मानते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं और उसीमें प्रीति को प्राप्त होते हैं। ५९१.

(श्री आदि पुराण)

❀ ममतारूपी लकडी अनेक प्रकारसे आत्मामें चिंतारूपी अग्नि लगा देती है। यह चिंतारूपी अग्नि आत्मामें अनंतकालसे जल रही है। इसे समतारूप जलके द्वारा बुझाया जा सकता है। ५९२.

(श्री बुधजन-सतसई)

www.vitragvani.com

❀ आत्माके स्वरूपसे अज्ञात पुरुषोंने शरीरमें अपनी और परकी आत्मबुद्धिके कारण पुत्र-स्त्री आदिके विषयमें विभ्रम वर्तता है। उस विभ्रमसे अविद्या नामक संस्कार दृढ़–पक्का होता है, जिसके कारण अज्ञानी जीव जन्मान्तरमें भी शरीरको ही आत्मा मानता है। ५९३.

(श्री समाधितंत्र)

❀ मिथ्यादृष्टि जीव आत्माके स्वरूपको भूलकर कर्मबंधके अच्छे फलमें राग करता है, बुरे फलमें द्वेष करता है तथा ज्ञान और वैराग्य जो आत्महितके कारण हैं उन्हें आत्माके लिये दुःखदायी मानता है। ५९४. *(श्री छहढाला)*

❀ हे देव! मुझे तेरी चिन्ता है; जब यह मध्याह्नका प्रसार बीत जायगा तब तू सो जायगा, और यह पक्ष सूना पड़ा रहेगा। (आत्मा है तब तक यह इन्द्रियोंकी नगरी आबाद है; आत्माके चले जानेपर यह सब उजड़ जाता है–सुनसान हो जाता है; इसलिये विषयोंसे विमुख होकर आत्माको साध ले।) ५९५. *(श्री पाहुड दोहा)*

❀ जैसे अग्नि ईंधन द्वारा तृप्त नहीं होती, समुद्र हजारों नदियोंके जलसे तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार संसारी जीव तीनोंलोकका लाभ मिलने पर भी तृप्तिको प्राप्त नहीं होता। ५९६.

(श्री भगवती आराधना)

❀ जो कर्मको मैं उदयमें लाकर भोगने चाहता था वह कर्म आप ही आ गया, इससे मैं शांतचित्तसे फल सहन कर क्षय करूँ, यह कोई महान ही लाभ हुआ। ५९७. *(श्री परमात्मप्रकाश)*

❀ मनुष्यपर्यायका एक-एक क्षण कौस्तुभ मणिसे भी मूल्यवान है, उससे चौरासीकी खानसे निकलनेका कार्य करना है। एक क्षण करोड़ों–अरबों रुपयेसे भी बहुमूल्य है। चक्रवर्तीके छहखण्डका राज्य देनेपर भी एक समय थोड़े ही मिलता है? उसमें (–मनुष्यपर्यायमें) यह एक ही करनेयोग्य है। ५९८. *(दृष्टिके निधान)*

❀ तुम्हें भाग्योदयसे मनुष्यपर्याय प्राप्त हुई है तो सर्व धर्मका मूलकारण सम्यग्दर्शन और उसका मूलकारण तत्त्वनिर्णय तथा उसका भी मूल कारण शास्त्राभ्यास वह अवश्य करने योग्य है। परन्तु जो ऐसे अवसरको व्यर्थ गँवाते हैं उन पर बुद्धिमानोंको करुणा आती है। ५९९.

(श्री सत्तास्वरूप)

❀ श्री गुरु जगवासी जीवोंको उपदेश देते हैं कि—तुम्हें इस संसारमें मोहनिद्रामें सोते हुए अनन्तकाल बीत गया है; अब तो जागो और सावधान होकर शांतचित्तसे भगवानकी वाणी सुनो! जिससे इन्द्रिय विषयोंको जीता जा सकता है। मेरे पास आओ, मैं तुम्हें कर्ममलरहित परम आनन्दमय तुम्हारे आत्मगुण बतलाऊँ। श्रीगुरु ऐसे वचन कहते हैं तब भी संसारी मोही जीव कोई ध्यान नहीं देते, मानों वे मिट्टीके पुतले अथवा चित्रमें चित्रित मनुष्य हैं। ६००. *(श्री नाटक समयसार)*

❀ इस संसाररूपी रंगभूमि पर यह जीव नाना प्रकारके शरीररूप वेष धारण कर नटकी तरह नाट्य-लीला करता है। जिसप्रकार रंगभूमिमें नट अनेक प्रकारके चित्र-विचित्र पात्रोंके रूप धारण कर उन्हीं जैसी चेष्टा करता है और दर्शकलोगोंको वास्तविककी सी भ्रांति करा देता है, उसी प्रकार यह जीव भी जन्म-मरणरूप इस संसार-रंगभूमि पर मनुष्य, तिर्यंच, नरक, देव इन गतियोंमें नाना प्रकारकी एकेन्द्रियादि जातियोंमें जन्म लेकर नाना प्रकारकी शुभ-अशुभभावरूप चेष्टा करता हुआ अपने पूर्वोपार्जित नाना प्रकारके कर्मोंका सुख-दुःख फल भोगता हुआ भ्रमण करता है उस समय उससे तन्मय होकर मैं उस पर्यायरूप ही हूं ऐसा भ्रमसे मानता है। ६०१. *(श्री सुभाषितरत्नसंदोह)*

❀ आजकल तो मोटर–रेल–हवाईजहाज आदिकी दुर्घटनाओंमें

www.vitragvani.com

कितने ही लोगोंके मरनेके समाचार आते रहते हैं। आँख खुले और स्वप्न चला जाय, तदनुसार शरीर और भव क्षणमें चला जाता है। हृदयाघात होनेसे क्षणमें छोटी-छोटी उम्रमें मृत्यु हो जाती है। अरे! यह सं....सा....र! नरकमें अन्नका दाना भी नहीं मिलता, पानीकी बूँद भी नहीं मिलती और प्रतिकूलताका पार भी नहीं है—ऐसे ऐसे प्रतिकूल संयोगोंमें अनन्तबार गया, परन्तु वहाँसे निकलने पर सब भूल गया। उसका विचार करे तो उन सब दुःखोंसे छूटनेका मार्ग ढूँढ़े। अहा! ऐसा मनुष्यभव मिला, और सत्य समझनेका योग प्राप्त हुआ है, उसमें अपने आत्माका हित कर लेने जैसा है। ६०२.

(दृष्टिके निधान)

❀ हे जीव! ऐसा है और वैसा है—यह सब कहनेसे क्या सिद्धि है? इस संसारमें परिभ्रमण करते हुए तूने ऐसे शरीर तो अनन्तबार प्राप्त किये हैं और छोड़े हैं। संक्षेपमें इतना ही कहना है कि जीवको शरीर (शरीरके प्रति ममत्वबुद्धि) ही सर्व आपत्तियोंका स्थान है। ६०३.

(श्री आत्मानुशासन)

❀ इस जन्म-मरणरूप संसारमें अनन्तकालसे परिभ्रमण करता हुआ जीव मनुष्यपर्याय प्राप्त करता है अथवा नहीं भी करता अर्थात् उसे वह मनुष्यपर्याय अत्यन्त कठिनाईसे प्राप्त होती है। यदि कदाचित् वह मनुष्यभव प्राप्त कर भी ले तथापि नीचकुलमें उत्पन्न होनेसे उसका वह मनुष्यभव पापाचरणपूर्वक ही नष्ट हो जाता है। यदि किसीप्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ तब भी वहाँ वह या तो गर्भमें ही मर जाता है अथवा बाल्यावस्थामें भी शीघ्र मरणको प्राप्त करता है, इससे भी धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती। पश्चात् आयुकी अधिकतामें वह धर्म प्राप्त हो जाय तो उसके विषयमें उत्कृष्ट प्रयत्न करना चाहिये। ६०४.

(श्री पद्मनन्दि पंचविंशति)

❀ (दिन-प्रतिदिन होनेवाली देहविकल्पकी क्षणभंगुर घटनाएँ सुनकर पूज्य गुरुदेवश्री वैराग्य भरे शब्दोंमें कहते हैं कि) हे भाई! यह शरीर तो क्षणमें छूट जायगा; शरीरका संयोग तो वियोगजनित ही है। जिस समय आयुकी स्थिति पूर्ण होना है उस समय तेरे करोड़ों उपाय भी तुझे बचानेमें समर्थ नहीं हैं। तू लाखों रुपये खर्च कर या करोड़ों कर, चाहे तो परदेशका डॉक्टर बुला, परन्तु यह सब छोड़कर तुझे जाना पड़ेगा। शरीरान्तकी यह निश्चित स्थिति जानकर वह स्थिति आ जाय उससे पहले ही तू चेत जा। अपने आत्माको चौरासीके चक्करसे बचा ले। आँख मिंचनेसे पूर्व जागृत हो। आँख मिंचनेके पश्चात् कहाँ जायगा उसकी तुझे खबर है? वहाँ कौन तेरा भाव पूछनेवाला होगा? तो फिर यहाँ लोग ऐसा कहेंगे और समाज ऐसा कहेगी—ऐसे मोहके भ्रमजालमें फँसकर अपने आत्माको किसलिये आकुल-व्याकुल कर रहा है? ६०५.

(दृष्टिके निधान)

❀ यहाँ उपदेश करते हैं कि—हे भव्य! हे भाई! यहाँ जो सांसारिक दुःख बतलाये हैं उनका अनुभव तुझे होता है या नहीं? तू जो उपाय कर रहा है उनका मिथ्यापना दर्शाया वह वैसा ही है या नहीं? तथा सिद्धदशा प्राप्त होनेपर ही सुख होता है यह बात बराबर है या नहीं? यह सब विचार! यदि उपरोक्तानुसार ही तुझे प्रतीति होती हो तो संसारसे छूटकर सिद्धदशा प्राप्त करनेके जो उपाय हम कहते हैं वे कर! विलम्ब नहीं करना! वे उपाय करनेसे तेरा कल्याण ही होगा। ६०६.

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक)

❀

www.vitragvani.com

वैराग्य-वाणी

(मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए मुमुक्षुको अमृत-संजीवनीका सिंचन)

छह-छह सप्ताह तक निरंतर माननीयश्री हीराचन्दजी मास्टर साहबके घर पधारकर परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी अत्यन्त कृपा दृष्टि-पूर्वक प्रसंगोचित जो सम्बोधन करते थे वह आत्मार्थी मुमुक्षुके लिये एक अपूर्व मार्गदर्शन एवं मृत्युकालमें भेदज्ञान-भावनाकी अत्यन्त जागृतिका कारण होनेसे इस 'वैराग्यवाणी'के संकलनको ''वैराग्य वर्षा''के संकलनसे संयुक्त करनेपर सोनेमें सुगन्ध जैसा एक सुयोग हुआ है। 'वैराग्यवाणी' के इस संकलनको 'वैराग्यवर्षा'के साथ संयुक्त करनेकी अनुमति देनेके बदले हम मास्टर साहबके परिवारका आभार मानते हैं।

—संकलनकार

सीमंधर प्रभु–वंदना

सीमंधर प्रभु! मोह टालकर, सुखद धर्म देना हमको,
परमभावसे ध्यान धरूँ मैं, जिनपति तुम्हें वंदना हो।
हे जगत्राता! दर्शन देकर, सुखद भक्ति देना हमको,
परमभावसे ध्यान धरूँ मैं, जिनपति तुम्हें वंदना हो।
तीन जगतके तुम हो स्वामी, सुखद भक्ति देना हमको,
परमभावसेद्यख्९द्म द्यघ्०द्मध्यानद्यख्९द्म द्यघ्०द्मधरूँद्यख्९द्म द्यघ्०द्ममैं,द्यख्९द्म द्यघ्०द्मजिनपतिद्यख्९द्म द्यघ्०द्मतुम्हेंद्यख्९द्म द्यघ्०द्मवंदनाद्यख्९द्म द्यघ्०द्महो।
हे जगदीश्वर दुःख मेटकर, सुखद स्वरूप हमें देना,
परमभावसेद्यख्९द्म द्यघ्०द्मध्यानद्यख्९द्म द्यघ्०द्मधरूँद्यख्९द्म
द्यघ्०द्ममैं,द्यख्९द्म द्यघ्०द्मप्रभुवरद्यख्९द्म द्यघ्०द्मतुम्हेंद्यख्९द्म द्यघ्०द्मवंदनाद्यख्९द्म द्यघ्०द्महो।
हे परमेश्वर! व्याधि दूर कर, अचल शान्ति देना हमको,
परमभावसे ध्यान धरूँ मैं, जिनपति तुम्हें वंदना हो।
प्रभुजी! मेरे शत्रु शांत हों, शरण तुम्हारी रहे सदा,
परमभावसे ध्यान धरूँ मैं, जिनपति तुम्हें वंदना हो।
संकटद्यख्१द्म द्यघ्०द्मदूरद्यख्१द्म द्यघ्०द्मकरोद्यख्१द्म द्यघ्०द्मप्रभुद्यख्१द्म द्यघ्०द्ममेरे,द्यख्१द्म द्यघ्०द्मचरण-कमलकीद्यख्१द्म द्यघ्०द्मसेवाद्यख्२द्म द्यघ्०द्मदो,
परमभावसे ध्यान धरूँ मैं, जिनपति तुम्हें वंदना हो।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

[१]

मृत्यु तो एकबार होना ही है, इसलिये शरीरका लक्ष छोड़कर अमृतस्वरूप आत्मा पर दृष्टि देना ही योग्य है।

—पूज्य गुरुदेवश्री

[प्रथम सप्ताह : ता. २९-९-६३ से ४-१०-६३]

धर्मात्मा-सन्तोंके दर्शन मुमुक्षु जीवको किसी भी परिस्थितिमें उत्साहित करते हैं.....धर्मात्माको देखते ही उसके शारीरिक कष्ट तथा जीवनकी प्रतिकूलताएँ सब एकबार तो विस्मृत हो जाते हैं। बड़े-बड़े डॉक्टरोंनी दवाएँ जिस वेदनाको शांत नहीं कर सकतीं वह वेदना धर्मात्माके एक ही वचनसे विस्मृत हो जाती है। एक कविने ठीक ही कहा है कि–

जगमें जीवन-मरण-रोगका अंत नहीं
अगर शांतिदाता हैं तो तीर्थ और संत हैं।
संसार-सागरके गहन अंधकारमें,
दीपस्तंभ हैं तो तीर्थ और संत हैं।

भाग्योदयसे हमें ऐसे सुजान वैद्य तथा अचल दीपस्तंभके समान सन्तोंके दर्शन एवं वचनका सुयोग प्राप्त हुआ है......उस पर भी जीवनकी अंतिम स्थितिमें उनकी साक्षात् उपस्थिति और उत्साहप्रेरक वैराग्यवाणी सर्व जीवोंके लिये उत्पन्न उपकारी है। इसलिये मुमुक्षुओंके हितार्थ यहाँ उस वाणीका संकलन किया है।

मास्टर साहब हीराचन्दभाईकी बीमारीके समय पूज्य गुरुदेवश्री जब दर्शन देने पधारे तब मास्टर साहबने गद्‌गद् होकर कहा—पधारो.....पधारो....मेरे तारणहार नाथ पधारो! आपने पधारकर मुझे

सियालमेंसे सिंह बना दिया।

गुरुदेवने कहा : मास्टर, तुमने तो बहुत सुना है और सबको बहुत समझाते थे। इस समय तो बस, मैं ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ–उसका लक्ष रखना। शरीरका तो जो होना होगा सो होगा। इस चैतन्यकी शक्तिके गर्भमें परमात्मा विराजता है, उसका स्मरण करना।

गुरुदेवके वचन सुनकर मास्टर साहबने कहा कि–इसी प्रकार बारम्बार दर्शन देनेको पधारें ऐसी मेरी बिनती है। जिसे स्वीकार करने पर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई थी। फिर मांगलिक सुनाकर गुरुदेव बोले : यह तो मृत्यु-महोत्सव है; जीवनमें जो शुभभाव किये हैं उनके फलस्वरूप स्वर्गमें जाना है और वहाँसे सीमंधर भगवानके पास जाना। शरीर छूटे तो छूटने दो, आत्मा तो अनादि-अनन्त है।

मास्टर साहब बोले : रात्रि बड़ी भयंकर लगती है, वेदना और बेचैनीमें जाती है।

गुरुदेवने कहा : यह तो शरीरकी दशा है, उसका लक्ष छोड़कर आत्माका लक्ष करना। आत्माके ज्ञान और आनन्दके विचारमें लग जाना। नरकमें जीवने तेतीस-तेतीस सागर तक घोर वेदना सहन की हैं; शरीरका स्वभाव बदलनेवाला नहीं है, इसलिये अपनेको समता रखना चाहिये। "मैं तो चैतन्यस्वरूप ज्ञान हूँ" इसप्रकार फड़ाक् से परसे भिन्न चैतन्यमें दृष्टि लगा देना। फिर शरीरका जो होना हो सो हो। 'शरीरमें तो नई-नई व्याधियाँ होती रहती हैं।" परन्तु भाई! ऊँटके तो अठारहों अंग टेढ़े!.....इस शरीरके परमाणु स्वयं कर्ता बनकर ऐसी दशारूप परिणमित हो रहे हैं। मृत्यु तो एकबार होना है......उसमें ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिके बिना कल्याण नहीं है।

शरीरका अध्यास दीर्घकालीन है इसलिये भिन्नताका विचार करना.....यह काल निवृत्तिका है; कुछ नवीन करना चाहिये। शरीरका

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

लक्ष छोड़कर चैतन्यके अमृत पर दृष्टि देने जैसा है।

मास्टर बोले : मैं बहुत भाग्यशाली हूँ जो प्रतिदिन आपके दर्शन होते हैं। अब मुझे अमरमंत्र दीजिये।

गुरुदेवने कहा : अंतरकी गुप्त गुफामें अखण्ड आनन्दमूर्ति आत्मा विराजमान है वह अमर है, उसका लक्ष करो। शरीरका तो होता रहेगा। एक आदमीको आठ-आठ वर्ष तक ऐसा रोग रहा कि शरीरमें इल्लियाँ पड़ गईं.... परन्तु उससे क्या हुआ? शरीरके ऊपरसे दृष्टि हटा लेना। अपनेको तो अस्तित्व आदि आत्माके गुणोंका विचार करना चाहिये। आत्मा आनन्दकन्द है।

श्री दीपचन्दजी सेठिया निम्नोक्त काव्य पंक्तियाँ बोले :-

शान्ति समरमें कभी भूलकर.....धैर्य नहीं खोना होगा,
वज्र प्रहार भले नित प्रति हो....दृढ़ जीवी होना होगा;
आत्मकार्यकी सुन्दर गठडी चित पर रख ढोना होगा,
होगी निश्चय जीत आत्मकी, यही भाव भरना होगा।

गुरुदेवने कहा : अपनेको तो आत्माकी सम्हाल करना है। यह शरीरका रोग तो ठीक, परन्तु मुख्य रोग आत्माका है। 'आत्म-भ्रान्ति सम रोग नहि......' यह अनादिका रोग है उसे मिटाकर आत्माका हित करना है। आत्मा ''शुद्धबुद्ध-चैतन्यघन'' है, बस उसीके विचार करना। घबराना नहीं; यह तो अपना हित करनेका समय है। आत्मा सहजानन्दमूर्ति है-उसका विचार करना।

आत्मा असंख्यप्रदेशी, अखण्ड, अनन्तगुणका धाम है, समय-समयपर जो परिणाम हों उनका वह द्रष्टा-ज्ञाता है। यही समाधिका मंत्र है। आनन्दघनजी कहते हैं कि-'जीत नगाड़े बजे.....' ऐसा मनुष्य भव मिला, सत्समागमका ऐसा साधन प्राप्त हुआ....फिर क्या करना? बस, ज्ञानस्वरूप आत्माकी भावना भाना....उत्साह बना रखना।

गुरुदेवकी ऐसी वाणी सुनकर सबको उत्साह जागृत होता था और वैराग्यकी शक्ति मिलती थी। मास्टर भी उत्साहमें आकर बोले-मैं बहादुर हूँ आपके वचनोंसे बड़ी शक्ति मिलती है। गुरुदेवने कहा : शरीरमें रोगादि तो आते ही रहते हैं, अंतरमें वीरता होना चाहिये। देखो न, आत्मा तो देखनेवाला ज्ञान-शान्तिका धाम है.....भीतर जो कफ भरा है उसका भी जाननेवाला है। किसीकी पर्याय किसीमें नहीं जाती और किसीकी पर्यायमें कोई आता नहीं है। सब अपनी-अपनी पर्यायमें पड़े हैं। शरीरका तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता मात्र कल्पना ही करता है कि ऐसा करूँ तो ऐसा होगा। शरीरमें रोग आता है और सब होता है परन्तु अंतरमें आत्माका पुरुषार्थ करना है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है उसकी प्रतीति करना ही सच्चा मंत्र है। रागसे भी रहित है वहाँ शरीरकी क्या बात?-ऐसे शुद्ध निरंजन चैतन्यका विचार करने जैसा है, उसे लक्षमें लेकर उसका मनन करने जैसा है। इस शरीरकी चिन्ता करते रहनेसे कुछ भी मिटनेवाला नहीं है; उसका लक्ष या विचार करनेसे रोग नहीं मिटेगा। उसमें तो धैर्य रखकर आत्माके विचारोंमें मन लगाना; उसीमें शान्ति है। बाह्यमें अपनी इच्छानुसार थोड़े ही होता है? वह तो परमाणुकी पर्याय है। शरीर शिथिल हो गया और देह छूटनेका समय आ गया....अब शत्रुके सामने तैयार हो जाओ.....राग और मोहरूपी शत्रुके समक्ष सावधान हो जाओ.....मैं तो सिंहके समान हूँ—ऐसा पुरुषार्थ क्यों नहीं होगा? मास्टर साहबने गुरुदेवका चरणस्पर्श करके कहा : गुरुदेव! मेरे ऊपर ऐसी ही करुणा करते रहना।

ता. ३-१०-६३ के सायंकाल पूज्य बहिनश्री-बहिन भी पधारीं थीं। दोनों बहिनोंको देखकर मास्टर साहबने प्रसन्नतापूर्वक कहा : पधारो माताजी! आपने मुझपर अत्यंत करुणा की। बहिनश्रीने कहा : आपने तो गुरुदेवके पास बहुत श्रवण किया है, कई बरसों तक सुना है उसका रटन करना। रोगकी वेदना कहीं आत्मामें नहीं होती, आत्मा तो ज्ञायक

www.vitragvani.com

है, उसका लक्ष रखना। मैं और शरीर भिन्न हैं, मेरा आत्मा तो ज्ञान और शान्तिका पिण्ड है, उसका ग्रहण करना। गुरुदेवने बहुत उपदेश दिया है, उसका बारम्बार विचार करना। आत्माका रटन करना, वही करने योग्य है। 'मैं ज्ञायक हूँ, मुझमें वेदना नहीं है; दुःख नहीं है, व्याधि नहीं है, मैं ज्ञान और आनन्दका पिण्ड हूँ।' आपने तो बहुत सुना है और बहुतोंको सिखलाया है; अब स्वयं अपना कार्य करना है। जागृति रखना; शान्ति रखना। इनके पास सबको अच्छे गीत गाना, भक्ति करना तथा धर्मकी चर्चा करते रहना। आप तो गुरुदेवकी शरणमें आये हो....यह तो आराधनाका काल आया है, इसलिये उसके विचार करना। कोई सुनाये, न सुनाये, परन्तु स्वयं अपना रटन करते रहना।

❀

[२]

भाई! शरीर तेरा कहना नहीं मानता तो उस पर प्रेम किसलिये करता है? —*पूज्य गुरुदेव।*

(दूसरा सप्ताह, दिनांक ६-१०-६३ से १२-१०-६३)

गुरुदेवश्री वैराग्यका उत्साह जागृत करते हुए कहते हैं कि—भाई! शरीरमें परिवर्तन हो उससे आत्माको क्या? विकल्प और चिन्ता करनेसे क्या मिलता है? चिन्ता न तो शरीरके काम आती है और न आत्माको.....इस प्रकार दोनों ओरसे वह निरर्थक है। शरीर थोड़े ही तेरा कहा माननेवाला है? आनन्द और शान्ति सब आत्मामें है, बाकी इस मिट्टीके पुतलेमें कुछ नहीं है। व्यर्थ ही इधरसे उधर और उधरसे इधर करता रहता है। शरीर तो छोड़कर जानेवाला है, वह कहीं रहनेवाला नहीं है।

अरे, यह शरीर जब तेरा कहना नहीं मानता तो उसके साथ प्रेम क्यों करता है? जो अपना कहा न माने उस पर प्रेम कैसा? शरीरमें आत्माकी इच्छानुसार नहीं होता; शरीरकी क्रिया वह जड़की क्रिया है। देखो न, समयसारादिकी टीकाके अन्तमें आचार्यदेव कहते हैं कि इस टीकाके शब्दोंकी रचना परमाणुओं द्वारा हुई है, वह कहीं मेरा कार्य नहीं है। जब टीका रचनेकी ऐसी स्थिति है......तब यह सब तो कहाँ रहा!

गुरुदेवके पधारते ही मास्टर साहबने अंतरसे उपकार प्रदर्शित किया.....गुरुदेवने कहा : आज प्रवचनमें आया था कि आत्मा भीतर मात्र अबंधस्वरूप है। अंतर्मुख होकर उसमें स्थिरता करे उतना ही लाभ है, शुभाशुभभावोंमें लगे रहनेमें उतनी ही हानि है। वैसे तो बाह्यमें जैसा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है सो है। इस शरीरकी स्थिति देखो न! संसार ऐसा ही है। परवस्तु अपनेसे बिलकुल भिन्न है, उसमें हम क्या कर सकते हैं?

शरीर अशक्त हो गया....परन्तु जो अपना सामना करता है, जो अपनी इच्छानुसार नहीं चलता उसकी ओर क्या देखना? यह शरीर तो उलटा है......वह तो ऊँटके अठारहों अंग टेढे जैसा है। इसकी तो उपेक्षा करने जैसी है कि—जा, तेरे सामने हम नहीं देखेंगे! जैसे—घरमें कोई उलटा चले, सामना करे तो उसके साथ क्या व्यवहार करना? उसे कौन घरमें रखेगा? वैसे ही शरीर तो आत्मासे विपरीत स्वभाववाला है, वह क्षणमें पलट जाता है और उलटा चलता है, उसके साथ क्या सम्बन्ध रखना? उसका लक्ष ही हटा देना चाहिये। अंतरमें आत्मा रागरहित चैतन्यसूर्य विराजता है उसकी ओर देखो। शरीरकी अनुकूलतामें या रागमें आनन्द मानना वह तो दुःख है; चैतन्यस्वभाव आनन्दरूप है उसका लक्ष करना।

गुरुदेवकी बातें सुनकर मास्टर साहबने प्रमोदपूर्वक जयकार किया था।

शुद्ध ज्ञानरूपी आत्मा इस देहदेवालयमें छिपा हुआ है। भावनगरके महाराजा भावसिंहजीका उदाहरण देकर गुरुदेवने कहा कि–छातीमें कफ चिपक जाय उसे बाहर निकालनेकी शक्ति आत्मामें नहीं है। डॉक्टरसे निवेदन करे कि डॉक्टर साहब! मेरे बच्चे छोटे-छोटे हैं; इनकी माँ तो इन्हें छोड़कर चली गई अब मैं भी मर गया तो यह बच्चे बिना माँ–बापके अनाथ हो जायँगे। मेरी छातीमें जो कफ जम गया है उसे निकाल दीजिये!......परन्तु भाई! जब तेरे शरीरके परमाणु पलटने लगें तब वहाँ कौन रोकेगा? या तो ज्ञाता रहकर जान.....अथवा विकल्प करके दुःखी हो! अपने अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुण अपनेमें परिणमित हो रहे हैं, उनका बराबर विचार करना। शरीरका जो होना होगा वह होता रहेगा।

पूज्य बहिनश्री बहिनके पधारने पर मास्टर साहबने प्रसन्नतासे कहा : पधारो माताजी! हम तो आपके बालक हैं। पूज्य दोनों बहिनोंने कहा कि–मास्टर, आपने तो वर्षोंतक गुरुदेवकी शरणमें रहकर जीवन बिताया है; देव-गुरुका तथा आत्माका स्मरण करना। भावना अच्छी रखना। रोग तो अनेक प्रकारके आते हैं; सनतकुमार चक्रवर्ती जैसोंको भी कैसा रोग आया था। परन्तु आत्मामें रोग कहाँ है? रोग तो पर द्रव्य है। मेरा आत्मा चैतन्य है, ज्ञान-आनन्दका पिण्ड है–ऐसा चिन्तन करना। यह तो विचार-मनन करनेका अवसर है, उसका प्रयत्न करना। आनन्दमें रहना और आत्माका स्मरण करना। गुरुदेवने बहुत समझाया है।

मास्टर बोले : मेरा मन गुरुदेवकी शरणमें है; गुरुदेवने बहुत दिया है। दूसरे दिन गुरुदेवके पधारने पर मास्टरने कहा : साहब, आपके बतलाये हुए मार्गपर अन्त तक पहुँचना है। गुरुदेव बोले : अंतरमें बराबर विचार करना; आत्माके विचारमें रहना। आत्मा तो पुण्य–पापसे भिन्न तथा शरीरसे भिन्न अकेला चैतन्यकन्द आनन्द धाम है। बस, एकाकी.....उसीके विचार, निरन्तर विचार.... 'कर विचार तो पाम!' आत्मसिद्धिमें कहा है न?

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीअे केटलुं? कर विचार तो पाम।

—ऐसे विचार–मनन करे वह सब साथ लेकर जाता है।

दूसरोंको बहुत सिखलाया, यह स्वयंको सीखनेका अवसर आया है; भेदज्ञानके प्रयोगका अवसर आया है। जैसे कसरत करते हैं न! वैसे ही इस समय आत्मा और शरीरको पृथक् करनेकी कसरत करना है। कहा है न कि—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किलकेचन।
तस्यैवाभावतो बद्धाः बद्धा ये किलकेचन।।

www.vitragvani.com

जितने सिद्ध हुए हैं वे सब भेदज्ञानसे ही अर्थात् रागसे भिन्नता और चैतन्यके साथ एकता करके ही हुए हैं।–उसके अभ्यासका यह अवसर आया है।

परमाणुकी पर्यायमें उसके उत्पाद्के समय उत्पाद् और व्ययके समय व्यय। आत्मा उसमें क्या कर सकता है?—या तो ज्ञान करेगा या फिर अभिमान करेगा? शरीर एवं आत्मा अत्यन्त भिन्न, एक-दूसरेका स्पर्श भी नहीं करते। यह शरीर तो मृतक कलेवर है और भगवान आत्मा अमृतका पिण्ड। अमृतस्वरूप चैतन्यघन भगवान आत्मा अपनेको भूलकर मृतक कलेवरमें मूर्च्छित हुआ!—ऐसा समयसारकी ९६वीं गाथामें आचार्यदेवने इस शरीरको (वर्तमानमें ही) मृतक कलेवर कहा है।

अरे, यह तो निवृत्तिका काल है, विशेष स्वाध्याय-विचारका अवसर है। अरे, यह व्याधि तो क्या है? नरकमें कितनी पीड़ा है? तथापि वहाँ भी विचार करके जीव आत्माकी प्रतीति करते हैं। भगवान आत्मा चैतन्य मन्दिर है, उसका विचार करनेसे कौन रोकनेवाला है?

मास्टरने कहा : साहब, मुझे तो तीनों ओरसे व्याधिने घेर लिया है।

गुरुदेव बोले : अरे, परन्तु यह सामने सम्पूर्ण आत्मा बैठा है न?—यह शुद्ध ज्ञान-आनन्दके चैतन्य सामर्थ्यसे परिपूर्ण विशालकाय सिंह जैसा उन बकरोंको भगा देगा। इसके सामने देखते ही व्याधिका लक्ष हट जायगा। ऐसे तो कितने ही रोग आते हैं और चले जाते हैं, उनसे भिन्न अपना सामर्थ्य रखकर भगवान आत्मा भीतर बैठा है—उसके विचार करो!

❀

[३]

> शरीर तो अचेतन–पुद्गलका पिण्ड है; मैं उसका कर्ता या आधार नहीं हूँ; मुझे उसका पक्षपात नहीं है; उसका जो होना हो वह होओ! मैं तो अपनेमें मध्यस्थ हूँ।

(तीसरा सप्ताह ता. १३-१०-६३ से १९-१०-६३)

श्री मास्टरसाहबको महाविदेह सम्बन्धी स्वप्न आया; उस परसे गुरुदेवने कहा : यह शरीर तो बिलकुल क्षीण हो रहा है यह ध्यानमें रखना और दिनभर अच्छे विचार करना। स्वर्गमें जाकर भगवानके पास पहुँचना है ऐसी भावना भाओ! बहुत दिनोंसे जो स्वाध्याय किया है उसके विचार करते रहो! आज व्याख्यानमें आया था कि आस्रवको तोड़ देनेवाला यह धनुर्धर–सम्यग्दृष्टि बाणावली भेदज्ञानकी टंकार करता हुआ तड़ाकसे शरीर-मन-वाणीको तथा रागको भेदकर आत्मासे भिन्न कर देता है। ऐसे भेदज्ञानका बारम्बार विचार करना! धनुषकी टंकार करता हुआ भगवान जागृत हुआ वहाँ राग भाग गया....शरीर तो कहीं एक ओर रह गया। शरीर तो वस्तु ही भिन्न है उसके साथ आत्माका क्या सम्बन्ध है?

दूसरे दिन गुरुदेवके पधारने पर मास्टरने कहा : कोटि कोटि नमस्कार! मिथ्यात्व-अंधकारका नाश करनेवाले गुरुदेवकी जय हो! गुरुदेव बोले : शरीर दुर्बल होता जा रहा है परन्तु आत्मामें सबलता है उसका (आत्माकी अनन्त शक्तिका) विचार करना, और शरीरके आगे भिन्नताका बाँध बना देना। अंतरमें चैतन्य-सम्राट विराज रहा है वह महान चैतन्य परमेश्वर है, उसके विचार-मनन करना।

बाह्य आहार आत्माका नहीं है; आत्माको नित्यानन्द भोजी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है......जो भेदज्ञान है वह सदा आनन्दका स्वाद लेनेवाला है। वही आत्माका सच्चा भोजन है–यह नहीं। देखो, यह धनतेरसका भोजन। शरीर तो जो है सो है। भीतर भगवान आत्मा आनन्दका सागर है। आनन्द आत्मामें है, उसकी रुचि और विश्वासका मंथन करना चाहिये। जहाँ आत्मामें और आस्रवभावोंमें भी एकता नहीं है वहाँ शरीरके साथ एकताकी तो बात ही कहाँ रही?

(कार्तिक कृष्णा अमावस्या:) आज दीपावली है। आत्माकी दीपावली कैसे करें? कि–आत्माके स्व-कालको अन्तर्मुख करके सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान की दीप प्रज्वलित करना वह सच्ची दीपावली है; आत्मा पर घरमें जाता है उसे निजगृहमें लाना सो दीपावली। देखो न! आज भगवान महावीर मोक्ष पधारे....समश्रेणीसे जिस स्थानमें गये हैं वहाँ सिद्धालयमें सादि अनन्तकाल तक.....अनन्तकाल तक एक ही स्थानमें पूर्णानन्दरूपसे ज्योंके त्यों रहनेवाले हैं। संसार भ्रमणमें तो कुछ काल यहाँ और कुछ काल अन्य गतिमें—यहाँसे वहाँ भ्रमण होता था, एक स्थानमें स्थिरता नहीं थी; अब आत्मा अपनेमें पूर्ण स्थिर होनेसे बाह्यमें भी सादि-अनन्त एक ही क्षेत्रमें स्थिर रहता है। 'अपूर्व अवसर'की भावनामें भी आता है न? कि–

सादि अनंत अनंत समाधि सुखमें,
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो.....

—ऐसा स्मरण करके उसकी भावना भाने जैसी है। यह शरीर तो रोगका घर है। उसमेंसे आत्माको जैसा भिन्न है वैसा निकाल लेना। पहले दृष्टिमें और ज्ञानमें उसे पृथक् कर लेना।

मास्टरको शिथिल देखकर गुरुदेवने कहा : आत्मामें तो वीरता भरी है,–यह शिथिलता क्यों आ जाती है? आत्मा तो वीर है! शरीर जानेकी तैयारी हो तो उसे रखनेका क्या काम है? आत्माको शरीरकी आवश्यकता

नहीं है, वह जाता हो तो भले जाय। श्रीमद् राजचन्द्रने कहा है न? कि—

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां
वळी पर्वतमां वाघसिंह संयोग जो,
अडोल आसन ने मनमां नहि क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो.....

आत्माको शरीरकी आवश्यकता नहीं है और सिंह खाये जाता हो तो भले ही खा जाय....मुनिको क्षोभ नहीं होता। वह मानों मित्र मिला!—ऐसी अपूर्व दशा कब आयगी? उसकी भावना भायी है। संसार है वह तो.....शरीरका चलता रहता है.....वास्तवमें तो आत्माका करना है।

नूतन वर्षके दिन गुरुदेवने मांगलिक सुनाया। ज्ञानसूर्यका उदय होना ही मंगलप्रभात है; शरीर तो जीर्ण होता है, अंतरमें राग-द्वेषको जीर्ण करना।

❀

[४]

> मृत्युके समय जीवनके अभ्यासका जोड़ आता है। उस अवसर पर भेदज्ञानपूर्वक या उसकी भावनापूर्वक शान्तिसे शरीरका त्याग करे उसकी चतुराई सच्ची। —पूज्य गुरुदेव

(चौथा सप्ताह, ता. २०-१०-६३ से २७-१०-६३)

शरीर क्षीण होने लगा परन्तु आत्मामें अपार सामर्थ्य है....'ज्ञ' स्वभाव....सर्वज्ञस्वभाव....असीमस्वभावसे आत्मा परिपूर्ण है; जिसका 'ज्ञ'स्वभाव है उसे जाननेमें मर्यादा कैसी? जगतको मृत्युका डर है परन्तु ज्ञानीको तो आनन्दकी लहर है। मरण किसका? आत्मवस्तु शाश्वत है उसकी प्रतीति हुई वहाँ मरणका भय निकल जाता है। किसका जन्म और मरता कौन है? शरीर और आत्माकी भिन्नताका जो अभ्यास किया था उसके प्रयोगका यह अवसर है। संवत् १९६६में मोरबीके डाह्याभाईकी एक नाटक-मण्डली थी जो मीराबाई आदि धार्मिक नाटकोंका प्रदर्शन करती थी। जब डाह्याभाईका अन्तिम समय आया तब वे स्वयंको सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि—'डाह्या! तेरा डहापण (चतुराई) तब समझूँगा जब इस समय शान्ति रख लेगा!' तात्पर्य यह कि–जीवनमें नाटक कर-करके दूसरोंको तो बहुत बोध दिया—समझाया, अब मरण समयमें शान्ति रख सके तो तेरी चतुराई सच्ची। (यह तो एक लौकिक दृष्टांत है।) वैसे ही जब मृत्युकाल आये तब भेदज्ञानपूर्वक उसकी भावनासहित शान्तिसे शरीर त्याग करे उसकी चतुराई सच्ची। मृत्युके समय ही जीवनभर जो अभ्यास किया हो उसका जोड़ आता है।

सामने आस्रवरूपी योद्धा है और यहाँ ज्ञानरूपी योद्धा है; सम्यग्दृष्टि-

धनुर्धर भेदज्ञानरूपी तीर द्वारा आस्रवोंको जीत लेता है। ऐसे ज्ञानका विचार करना। जिह्वाके परमाणुओंमें चिकनाई–रूक्षता हो वह उसका स्वभाव है। आत्माके सिवा अन्य कोई शरण नहीं है। यह तो आस्रवके विरुद्ध संग्राम है। संग्रामके लिये आत्माको तैयार रखना चाहिये।

गुरुदेवके पधारने और उनके उत्साहप्रेरक वचन सुनने पर मास्टरने आनन्द व्यक्त किया। गुरुदेवने कहा : मास्टर, अब तो यह शरीर त्यागपत्र दे रहा है....भले यह चला जाय, आत्मा तो अविनाशी अकेला है। देखो न, बहिनोंने एकबार (कुमारी शारदाकी बीमारीके समय) वैराग्यसे गाया था कि—(ऐसा कहकर गुरुदेवने अत्यन्त वैराग्यरससे निम्नोक्त पद याद करके गाया—

आतमराम अविनाशी आया अकेला,
ज्ञान और दर्शन है उसका रूप जो....
बहिरभाव स्पर्श करें नहि आत्मको,
इसीलिये वह ज्ञायक वीर कहाय जो....

यह गीत याद करके फिर गुरुदेवने कहा कि आत्मा तो अविनाशी है। संवत् १९९३में जब खुशालभाई बहुत बीमार थे तब बहिनें भावनगर गई थीं और कहा था कि–खुशालभाई, 'आत्मा तो अविनाशी है....' यह बहिनोंके शब्द हैं....बस, एक ही बात! देखो तो सही, ऐसे आत्माको पहिचान ले उसे ज्ञायकवीर कहा जाता है। यह वीरताका मार्ग है।

आत्मा कहींसे अकेला आया और यह सब कुटुम्बकबीलेके लोग इकट्ठे हो गये....यह सब फिर बिखर जायँगे; शरीरके परमाणु भी बिखरकर पृथक्-पृथक् हो जायँगे। यह सब पंखियोंके मेले जैसा है। शरीरके रजकण एकत्रित हुए और उनका काल पूर्ण होनेपर बिखर जायँगे। चैतन्यतत्त्व, अकेला—एकाकी है वह अविनाशी है, बाकी इन संयोगोंमें कुछ नहीं है।

www.vitragvani.com

आत्माके विचार रखना....आत्मा ज्ञानस्वरूप है। योगसारमें कहते हैं कि—'सर्वजीव हैं ज्ञानमय।' आत्मसिद्धिमें भी कहा है कि 'सर्वजीव हैं सिद्धसम।' जो ज्ञानमय वही आत्मा है, बाकी सब जंजाल है, वह तो आती-जाती रहती है। शरीर भी आता-जाता रहता है; राग भी आता-जाता है। आत्मा नित्य ज्ञान....ज्ञान....ज्ञानरूप रहता है।—ऐसा जाननेमें सच्चा समभाव है। जहाँ-जहाँ ज्ञान वहाँ-वहाँ आत्मा—ऐसा अविनाभाव सम्बन्ध है। रागादि रहित आत्मा होता है परन्तु ज्ञानरहित आत्मा नहीं होता। उनके पुत्र हेडमास्टर श्री रतिभाईने कहा कि—ऐसे विचार ही सच्ची औषधि हैं। गुरुदेवने बहुत अच्छी औषधि दी है।

आत्मा परमें और विकल्पमें भटकता है वह अपने स्वभावगृहमें आकर रहे वह सच्चा वास्तु कहा जाता है। आज प्रवचनमें अलिंग-ग्रहणकी बात आयी है; आत्मा इन्द्रियोंसे जानता नहीं है और इन्द्रियों द्वारा वह जाननेमें नहीं आता। ऐसा आत्मा ज्ञानसे जाननेमें आता है; वह अपने भीतर ही है परन्तु 'अपने नयनके आलस्यसे....मैंने देखा न हरिको कभी....' दृष्टि डालनेवाला अपनेमें दृष्टि न डाले और परमें देखता रहे तो उसमें शान्ति कहाँसे मिलेगी? अब तो निवृत्ति मिली है; काम कुछ नहीं और पीड़ा भी कुछ नहीं; इस समय अंतरमें विचार–मनन करना।

शरीर सूख जाय, वह तो क्षणभंगुर है। एक आदमीका शरीर तो भाषण देते-देते छूट गया था। एक उदाहरण आता है कि शूरवीर राजा हाथी पर बैठा है, सामनेसे बाण छूट रहे हैं और राजाका शरीर विंध जाता है....परन्तु गिरता नहीं है। राजाने सोचा कि अब शरीर टिकेगा नहीं, तब हाथीके हौदेमें बैठा-बैठा वह संयमभावनामें लीन हो जाता है....उसीप्रकार प्रतिकूलता एवं परीषहोंके बाण पर बाण आ रहे हों तथापि धर्मात्मा जीव पुरुषार्थपूर्वक उनके सामने खड़े रहकर झेलता रहता है....अपने मार्गसे च्युत नहीं होता। ज्ञानस्वरूप आत्मा अकेला आनन्दमूर्ति है, उसका लक्ष निरंतर रखना....उसकी डोर कभी छोड़ना

नहीं। जैसे मकड़ी पानीमें चल नहीं सकती इसलिये अपनी लारसे लारकी डोर बाँधती हुई सरसराती हुई ऊपर चली जाती है....वैसे ही चैतन्यकी रुचिकी डोर बाँध ली हो तो आत्मा सरसराता हुआ उस मार्ग पर चला जाता है। शरीरके रजकण तो कहींसे आया....और अब जाने लगे। बराबर अच्छे परिणाम रखकर जाना....भगवानका लक्ष रखना, भीतर भगवान अपना आत्मा और बाहर सीमंधर भगवान,—उन भगवानके पास जानेका लक्ष रखना।

उपयोग बराबर रखना; सावधान रहना। शरीरका तो होना हो वह हो; शरीरका क्या करना है? कालरूपी सिंहको जरूरत हो तो भले वह ले जाय....उससे आत्माको क्या? यद्यपि मृत्युकाल आये तब कठिनाई लगती है, परन्तु समता रखना चाहिये। शरीरमें साता हो तब कठिनाई नहीं लगती, परन्तु जब अशाता आनेपर प्रतिकूल प्रसंग हो तब उसके साथ लड़नेके लिये बड़े पुरुषार्थकी आवश्यकता होती है। मैं तो ज्ञान हूँ, मेरा और जड़ शरीरका क्या सम्बन्ध है? ऐसे लक्षसे समता रखना चाहिये। बाकी सब तो क्षणभरमें पलट जायगा। भव बदलने पर यहाँके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब क्षणभरमें बदल जायगा। शरीर बदल जायगा, काल बदल जायगा, भव बदल जायगा और भाव भी बदल जायगा। पूरा चक्र बदल जायगा। शरीरका चक्र तो चलता ही रहेगा, आत्मा उसे कहाँ परिणमित कर सकता है? राजकोटमें जयचन्दभाई फौजदारकी जब अन्तिम स्थिति थी, तब उन्हें मांगलिक सुनाया था। उस समय उन्होंने पूछा कि—महाराज! आप यह जो बोले उसका अर्थ क्या? वह समझाइये। तब मांगलिकका अर्थ किया कि आत्माकी पवित्रताको प्राप्त कराये और ममकारको गाले उस भावको मांगलिक कहते हैं। इत्यादि अर्थ सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उसी रातको उनका स्वर्गवास हो गया।

अरिहंत भगवानके कहे हुए भावको आत्मामें धारण कर रखना,

www.vitragvani.com

शरीरसे भिन्न तथा रागसे भी भिन्न ऐसे आत्मभावको धारण करना सो धर्म है, वह मंगल है। धवलामें श्री वीरसेनस्वामी कहते हैं कि आत्मद्रव्य स्वयं मंगलरूप है, तू स्वयं मंगल है, चिदानन्द है। चिदानन्दस्वरूपी भगवान आत्मा अनादि अनन्त मंगलरूप है। राग हो, परन्तु आत्मा उसका ज्ञाता है;—ऐसे आत्माके विचारमें रहना। आत्मा ज्ञान-आनन्दमय एवं रागसे बिलकुल भिन्न, उसका विचार, उसका मनन और मंथन करने जैसा है।

❀

[५]

> शरीरमें गड़बड़ हो उसपर लक्ष न करके ज्ञानानन्द स्वरूपका लक्ष करना....भिन्नताकी भावना रखना....स्व-सत्तावलम्बी उपयोग वह आत्माका स्वरूप है, उसके विचार करना। —पूज्य गुरुदेव

(पाँचवाँ सप्ताह, ता. २८-१०-६३ से ४-११-६३)

शरीरमें अशक्ति आ जाय, इन्द्रियाँ शिथिल हो जायँ, उससे कहीं आत्माको विचारदशामें बाधा नहीं आती। आत्मा कहीं इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आता, तथा इन्द्रियों द्वारा ज्ञान नहीं होता, आत्मा तो ज्ञानमूर्ति है वह ज्ञानसे ही (इन्द्रियज्ञान नहीं परन्तु अतीन्द्रियज्ञानसे) ज्ञात होता है। 'शुद्धबुद्धचैतन्यघन' यह दोहा कल कहा था, उसका स्मरण करके विचार करना। शरीरकी स्थिति अपने अधिकारकी बात नहीं है परन्तु अंतरके विचार करना वह अपने अधिकारकी बात है। अपना स्वरूप कैसे प्राप्त हो उसीके विचारोंका मंथन करना।

अरे, आजकल तो देखो न! पढ़े-लिखे लोग भी 'जीवित शरीरसे धर्म होता है' ऐसा मानकर इस मृतक कलेवरमें मूर्च्छित हो रहे हैं। अमृतस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं अपनेको भूलकर जड़ शरीरमें मोहित हुआ है, उसकी क्रियाको वह अपनी मानता है....क्या किया जाय!

शरीरकी स्थिति शरीर सँभालेगा, अपनेको अपने विचारमें रहना। आत्मा सहज चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञस्वभावी है, वह परम वस्तु है। श्रीमद् राजचन्द्रमें ''सहजात्मस्वरूप परमगुरु और सर्वज्ञदेव परमगुरु'' इत्यादि आता है—ऐसा अपना सर्वज्ञस्वभावी आत्मा ही परमदेव और परमगुरु है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

आत्मा अपने सर्वज्ञस्वभावका ही स्वामी है, जड़ शरीरका स्वामी आत्मा नहीं है। जड़का स्वामी तो जड़ होता है; चेतनका स्वामी चेतन होता है। सर्वज्ञस्वभावी आत्मा इन्द्रियोंसे या मात्र अनुमानसे ज्ञात नहीं हो जाता, स्वसन्मुखतासे ही वह ज्ञात हो ऐसा है। भीतर स्वयंमें सम्पूर्ण वस्तु विद्यमान है, उसमें 'करण' नामका स्वभाव है इसलिये वह स्वयं ही साधन होकर परिणमती है; दूसरा साधन कहाँ था?

एक वस्तुकी दूसरी वस्तु किंचित् भी नहीं है। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वरूपमें (अपने-अपने गुण-पर्यायोंमें) मग्न है, वहाँ कौन किसका करेगा?

यह शरीर तो धर्मशाला जैसा है। आत्माको उसमें रहनेकी अवधि है। अवधि समाप्त होनेपर अविनाशी आत्मा अन्यत्र चला जायगा। अरे, अविनाशी आत्माको बारम्बार ऐसे घर बदलना पड़ें वह कहीं शोभा देता है?

ता. ३१ के दिन गुरुदेव पधारने पर श्री मास्टर साहबने कहा : गुरुदेव, आपने निर्वाणमार्गका डंका बजाया है। आपकी वाणीका साक्षात् लाभ मिलता रहे ऐसी भावना बनी रहती है। गुरुदेवने कहा : आज तो भेदज्ञानकी बात आयी थी; आत्माको पवित्र स्वरूपमें राग नहीं है और रागमें आत्माका पवित्र स्वरूप नहीं है। दोनों वस्तुएँ ही भिन्न हैं। ऐसे भेदज्ञानके विचार वह आत्माका आहार है, आत्माका आहार बाह्यमें कहाँ है? इसलिये आत्माके ही विचार रखना।

शरीर तो फटफट गाड़ी जैसा है, उसमें फड़फड़ाहट तो होगी ही न? शान्ति तो आत्माके स्वरूपमें है, उसका प्रेम करना। आत्माका प्रेम छोड़कर परभावका प्रेम करना वह तो आत्माके प्रति क्रोध करने जैसा है। शरीरमें फड़फड़ाहट हो उसपर लक्ष नहीं देना। ज्ञानपरिणतिका आधार कहीं राग नहीं है। रागके या शरीरके साथ ज्ञानपरिणतिका क्या

सम्बन्ध है? शरीर ऐसा रहे तो ठीक और ऐसा रहता है तो ठीक नहीं— ऐसा कुछ भी आत्मामें नहीं है। शरीरकी जो पर्याय होती है वह यथायोग्य ही है। उससे भिन्नताकी भावना रखना....वह भिन्न ही है....पृथक्का पृथक्।

शरीर छूटता है तो छूट जाओ....उसे तो छूटना ही है; आत्माका कहाँ नाश होना है। वह तो अनादि है; चोला बदल जानेसे कहीं आत्मा नया नहीं होता—बदलता नहीं है। विभावमें स्वभाव नहीं और स्वभावमें विभाव नहीं। ज्ञानमें राग भी नहीं है, फिर शरीर तो कहाँ रहा? कर्म या नोकर्म भी ज्ञानमें नहीं हैं। संवर अधिकारमें इस बातका अच्छा भेदज्ञान कराया है। अरे, परसत्ताका अवलम्बन लेनेवाला परालम्बी उपयोग भी निश्चयसे आत्माका स्वरूप नहीं है; स्वसत्ताका अवलम्बन लेनेवाला स्वालम्बी उपयोग ही सच्चा आत्मा है। यह सब बहुत सुना–पढ़ा–विचार किया अब उसे प्रयोगमें लानेका अवसर है।

(ता. ३) श्री गुरुदेव पधारते ही बोले कि—आज तो अलिंगग्रहणमें आत्माकी सरस बात आयी थी। आत्माके निरालम्बी उपयोगका कोई हरण नहीं कर सकता। शरीरमें रोग आये या अन्य कोई प्रतिकूलता हो, उसमें ऐसी शक्ति नहीं है कि आत्माके उपयोगको नष्ट कर सके। किसीके द्वारा नष्ट नहीं किया जा सके—ऐसे शुद्ध उपयोगस्वरूप आत्मा है; वास्तवमें शुभाशुभ परिणामस्वरूप आत्मा नहीं है। ऐसे आत्माके विचार रखना।

उपयोगको बराबर जागृत रखना। शुद्धबुद्धचैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम....''के विचार करना। आजकल तो व्याख्यान बहुत सूक्ष्म आता है। आत्माके उपयोगलक्षणमें कोई आवरण नहीं है, मलिनता नहीं है; आवरणयुक्त या मलिनतायुक्त जो उपयोग उसे आत्माका यथार्थ लक्षण नहीं कहते। आत्मा इन्द्रियोंसे भिन्न है, इन्द्रियों द्वारा वह सुख-दुःखका भोक्ता नहीं है। दुःख तो क्षणिक कृत्रिम विकार है और आनन्द आत्माका

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

त्रिकाल शाश्वत अकृत्रिमस्वभाव है, इसलिये आनन्दस्वभावकी दृष्टिमें आत्मा दुःखका भोक्ता नहीं है। ऐसे आत्माको लक्षमें लिया वहाँ मृत्युका भय कैसा ?

जगतको मृत्युका डर है, परन्तु ज्ञानीको तो आनन्दकी लहर है।

❀

ममता तज समता धरज्यो

यह मोह महा दुःख खान, कोई मत करज्यो,
यह आपा पर बेभान, कोई मत करज्यो. १

यह क्रोध महा शैतान, कोई मत करज्यो,
यह दोष भयंकर जान कोई मत करज्यो. २

यह मान महा अपमान, कोई मत करज्यो,
यह दोषों में प्रधान, कोई मत करज्यो. ३

यह लोभ बिगाडे श्यान, कोई मत करज्यो,
यह जीवन को बलिदान, कोई मत करज्यो. ४

यह कपट महा अज्ञान, कोई मत करज्यो,
यह शांति नष्ट विधान, कोई मत करज्यो. ५

यह देह बनेली राख, ममता मत करज्यो,
यह विश्व अंगुष्ठ दिखाय, समता चित्त धरज्यो. ६

श्री सद्गुरु पूज्य महान, वंदन नित करज्यो,
श्री सद्गुरु पूज्य महान, वंदन नित करज्यो. ७

*

[६]

> मैं तो ज्ञान हूँ—ऐसी श्रद्धासे ज्ञानी वज्रपात होनेपर भी डिगते नहीं हैं और निजस्वरूपकी श्रद्धाको छोड़ते नहीं हैं। शरीर भले ही निस्तेज हो जाय परन्तु आत्माके भावोंको सतेज रखना। —पूज्य गुरुदेव

(अन्तिम सप्ताह, ता. ५-११-६३ से ११-११-६३)

ज्ञानका अचिन्त्य माहात्म्य है। अनन्त आकाश और अनन्त-कालको ज्ञान निगल जाता है। अनन्त–अमाप आकाशके पूर्ण अस्तित्वका निर्णय तो श्रुतज्ञान भी कर लेता है, फिर रागरहित पूर्णज्ञानमें कितनी शक्ति होगी ?! ऐसे-ऐसे तो अनन्तगुणोंकी शक्तिवान द्रव्य भीतर विद्यमान है—उसके विचार करते रहना। शरीरका पिंजरा तो अब छुट्टी माँगे ऐसा है। चैतन्य तो ठोस पिण्ड है और शरीर खोखला है।

भेदज्ञान द्वारा तीक्ष्णतापूर्वक विदीर्ण करके उग्र पुरुषार्थ द्वारा रागको आत्मासे अत्यन्त भिन्न करना। मेरे जागृत चैतन्यस्वरूपमें राग नहीं है और रागमें चैतन्यका प्रकाश नहीं है। राग न तो चैतन्यद्रव्यका है, नहीं गुणका या जड़का है;—उसकी तो त्रिशंकु जैसी दशा है। वह तो अद्धरका क्षणिकभाव है, उसकी जड़ें कोई गहरी नहीं हैं।

'नमः समयसाराय' इस मंगल श्लोकमें आचार्यदेवने शुद्ध आत्माका अस्तित्व, उसका ज्ञानगुण, उसकी स्वानुभूतिरूप निर्मल दशा और केवलज्ञानका सामर्थ्य—यह सब बतला दिया है; एक श्लोकमें बहुत भर दिया है। उसके विचारोंमें रहना। बाह्यमें तो होना होगा सो होगा।

www.vitragvani.com

(ता. ८) श्री मास्टर साहबने भक्तिपूर्वक कहा : गुरुदेव! आपने मुझपर बड़ी कृपा की है, आपका बड़ा उपकार है। गुरुदेवने वैराग्यपूर्वक कहा : देखो न संसारकी दशा! राजकोटके मूलजीभाईका आज अचानक स्वर्गवास हो गया। राजकोटमें मानस्तम्भ और समवसरण निर्माणकी उन्हें बड़ी अभिलाषा थी, परन्तु शरीरकी स्थितिका क्या पता कब पूरी हो जाय! इसलिये जागृत रहना। समयसारमें कहते हैं कि घोर-प्रचण्ड कर्म उदयमें आने पर भी धर्मी जीव अपने स्वरूपमें च्युत नहीं होते; सातवें नरककी वेदना सहते हुए भी सम्यक्त्वी-धर्मात्मा निजस्वरूपकी श्रद्धाको नहीं छोड़ते। 'मैं ज्ञान हूँ' ऐसी श्रद्धासे ज्ञानी वज्रपात होनेपर भी डिंगते नहीं हैं....अरे, यह तो क्या प्रतिकूलता है? जड़ शरीरमें फेरफार हो उससे आत्माको क्या है? संसार तो ऐसा ही है। किसीका शरीर जीर्ण होनेपर भी दीर्घकाल टिकता है और किसीका शरीर हृष्टपुष्ट दिखने पर भी क्षणमें नष्ट हो जाता है। इस शरीरका क्या भरोसा? मूलजीभाई कहते थे कि-महाराज साहब! हमें तो बड़ा काम करना है और महोत्सव मनाना है। मास्टर भी प्रवचनमण्डपमें बैठे ही रहते थे और नये-नये आनेवाले लोगोंको समझाते-सीखाते थे। अब तो आत्माका कार्य करना है। शरीरकी शक्ति तो भले मन्द हो जाय....परन्तु आत्माके भाव तेज रखना।

आत्माका स्वभाव स्व-सहायक है, स्वयं ही अपने लिये शरणभूत है अन्यत्र कहीं-कोई शरण नहीं है, अन्य कोई सहायक नहीं है। आत्माके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं दृष्टि डालने पर कोई शरणभूत हो ऐसा नहीं है। चैतन्यस्वभावकी ओर दृष्टि करके उसकी शरण लेना। स्वशरण ही सहायक है।

मास्टर बोले : साहब, मुझे तो आपकी ही शरण है।

गुरुदेवने कहा : सच्ची शरण तो अपनी है। दूसरा कौन शरण होगा? शरीरके रजकण बदलने लगे वहाँ सगे-सम्बन्धी तो पास खड़े-खड़े देखते रहते हैं....क्या करें? जगतमें कोई शरण नहीं है। चैतन्यका ध्यान रखना। चैतन्यका चिन्तन ही उद्धारका एकमात्र मार्ग है। अन्य किसी मार्गसे उद्धार नहीं है।

मूलजीभाई पर जब आखरी हमला हुआ तब दूसरी बातोंके बदले उन्होंने कहा कि बस, अब एक धर्मकी ही बातें करो। उनको प्रेम और उत्साह बहुत था; अन्तिम स्थितिका ध्यान आनेपर मानस्तम्भके चन्देमें चालीसके बदले पचास हजार करनेको अपने आप कहा और घरमें सबको धर्मप्रेमकी प्रेरणा करते गये। शरीरकी दशा तो ऐसी है, मास्टर! इसलिये तुम भी लक्ष रखना। और सब लक्ष छोड़ देना।

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति सुखधाम,
बीजुं कहिये केटलुं! कर विचार तो पाम।

उसका लक्ष रखकर उसीके विचारोंमें खो जाना। भीतर महान चैतन्यभगवान विराजमान है, उसीका लक्ष-विचार-मनन करना, बाह्यमें लक्ष जाय तो उसे तुरन्त अन्तर्मुख कर लेना।

[ता. ११-११-६३, अन्तिम दिवस]

आज मास्टर हीराचन्द्रभाईकी स्थिति अधिक गंभीर लगने पर श्री रतिलालभाई दोपहरमें गुरुदेवको बुलाने आये। प्रवचनके पश्चात् गुरुदेव पधारे और कहा कि-श्वासकी गति बदल गई है। मांगलिक सुनाया....शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन....आदि बोले....उस समय मुमुक्षुमण्डलके बहुतसे भाई-बहिन और पूज्य बहिनश्री-बहिन भी वहाँ उपस्थित थीं। गुरुदेवकी सूचनानुसार 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन'....आदि पद बोले; उस समयका वातावरण वैराग्यसे गंभीर था।-

आतमराम अविनाशी आव्यो एकलो,
ज्ञान अने दर्शन छे तारुं रूप जो.....
बहिर भावो ते स्पर्शे नहि आत्माने,
खरेखरो ए ज्ञायकवीर गणाय जो....

www.vitragvani.com

देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत,
ते ज्ञानीना चरणमां हो वंदन अगणीत.

अहो, अहो! श्री सद्गुरु करुणासिन्धु अपार,
आ पामर पर प्रभु कर्यो अहो! अहो! उपकार.

आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद सुजाण,
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार-ध्यान.

श्री रतिभाईने मास्टर साहबको मिश्रीका अन्तिम पानी पिलाया.... और बुलाने पर उन्होंने 'हाँ' कहा। अन्तिम क्षण आ गये थे....एक ओर सब ''सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी अविनाशी मैं आत्मस्वरूप''की धुन बोल रहे थे। गुरुदेवने णमोकार मंत्र सुनाया। मास्टर साहबके कुटुम्बीजन शरण सुना रहे थे : अरिहंतकी शरण, सिद्धकी शरण, सीमंधर भगवानकी शरण....पंचपरमेष्ठीकी शरण, आत्माकी शरण, जैनधर्मकी शरण, सद्गुरुदेवकी शरण....

कुछ ही देरमें गुरुदेवने पास खड़े हुए डॉक्टरसे मास्टरकी नाड़ी देखनेको कहा, तो....नाड़ी बन्द हो गई थी। डॉक्टर बोले : अब कुछ नहीं रहा।

गुरुदेवने कहा : चैतन्य चला गया।

—इस प्रकार गुरुदेवकी वैराग्यवाणीके श्रवणपूर्वक तथा देव-गुरुके शरणकी भावनासहित श्री हीराचन्दभाई मास्टर स्वर्गवासी हुए।

❀

वैराग्य भावना

(वज्रनाभि चक्रवर्तीकी)

(कविवर भूधरदासजी प्रणीत)

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग मांहि,
त्यों चक्री नृप सुखकरे, धर्म विसारे नाहिं.
इह विधि राज करै नरनायक, भोगे पुण्य विशालो,
सुख सागरमें रमत निरंतर, जात न जान्यो कालों.
एक दिवस शुभकर्मयोगसे, क्षेमंकर मुनि वंदे,
देखे श्री गुरुके पद-पंकज, लोचन अलि आनंदे. १

तीन प्रदक्षिणा दे सिर नायो, कर पूजा स्तुति कीनी,
साधु समीप विनय कर बेठ्यो, चरननमें दिठि दीनी.
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राज वैरागे,
राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे. २

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुद्धि भागी,
भव तन भोग स्वरूप विचारयो, परम धरम अनुरागी.
इह संसार महावन भीतर, भ्रमते छोर न आवे,
जन्मन मरन जरा दों दाझै, जीव महा दुःख पावै. ३

कबहुं जाय नरकथिति भुंजै, छेदन भेदन भारी,
कबहूं पशु पर्याय धरे, तहं वध-बंधन भयकारी.
सुरगतिमें पर संपत्ति देखे, राग उदय दुःख होई,
मानुषयोनि एक विपतिमय, सर्व सुखी नहीं कोई. ४

कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी,
कोई दीन दरिद्र दीखै, कोई तन के रोगी.
किस ही घर कलिहारी नारी, के वैरी सम भाई,
किस ही के दुःख वाहिर दीखे, किस ही उर दुचिताई. ५

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै,
खोटी संतति सों दुःख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै.
पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहीं सदा सुख साता,
यह जगवास यथारथ देखे, सब ही है दुःख दाता. ६

जो संसार विषे सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे,
काहे को शिव साधन करते, संयम सों अनुरागे.
देह अपावन अस्थिर घिनावन, यामें सार न कोई,
सागर के जल सो शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई. ७

सप्त कुधातु भरी मल मूत्रसे, चर्म लपेटी सोहै,
अंतर देखत या सम जगमें, और अपावन को है.
नव मल द्वार स्रवें निशि वासर, नाम लिये घिन आवे,
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां, कौन सुधी सुख पावे. ८

पोषत तो दुःख दोष करे अति, सोषत सुख उपजावे,
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावे.
राचन योग्य स्वरूप न याको, बिरचन योग्य सही है,
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है. ९

भोग बूरे भव रोग बढावै, बैरी है जग जीय के,
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागै नीके,
वज्र अग्नि विष से विषधरसे, हैं अधिक दुःखदाई,
धर्मरत्नके चोर प्रवल अति, दुर्गतिपंथ सहाई. १०

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने,
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने,
ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर, मन वांछित जन पावे,
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके, लहर लोभ विष लावे. ११

मैं चक्रीपद पाय निरंतर भोगे भोग घनेरे,
तो भी तनिक भये नहीं पूरण, भोग मनोरथ मेरे,
राज समाज महा अघकारण, बैर बढावनहारा,
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पत्यारा. १२

मोह महारिपु बैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे,
घर कारागृह वनिता बेडी, परिजन है रखवारे,
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जिय के हितकारी,
यह सार असार और सब, यह चक्री चित धारी. १३

छोडे चौदह रत्न नवों निधि, अरुं छोडे संग साथी,
कोडि अठारह घोडे छोडे, चौरासी लख हाथी,
इत्यादिक संपत्ति बहु तेरी, जीर्ण तृण सम त्यागी,
नीति विचार नियोगी सुतको, राज दियो बडभागी. १४

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे,
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे,
धनि यह समज सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी,
ऐसी संपत्ति छोड बसे वन, तिन पद धोक हमारी. १५

''परिग्रह उतार सब, लीनो चारित पंथ,
निजस्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निर्ग्रंथ.''